• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेनकथासु यः।

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर।

वर्ष १२ { गौराब्द ४८०, मास—पद्मनाभ १८, वार—सङ्कर्षण
सोमवार, ३० आश्विन, सम्वत् २०२३, १७ अक्टूबर, १९६६ } संख्या ४-५

श्रीव्रज विलास स्तवः

[गतांक से आगे]

पर्जन्यनामा निजनप्तृगर्वैः पर्जन्यलक्षाण्यभितो विनिन्दन्।
यो नर्म तन्वन् रमतेऽस्य कर्णे, नमाम्यहो कृष्णपितामहं तम्॥१३॥

प्रियस्य नप्तुः सुखतोऽतिगर्वात्, पादौ न यस्याः पततः पृथिव्याम्।
नमामि नर्मांचित-नप्तृ-चन्द्रां, वरीयसीं कृष्णपितामहीं ताम्॥१४॥

श्वेत-श्मश्रुभरेण सुन्दरमुखः श्यामः कृती मन्त्रणा-
भिज्ञः संसदि सन्ततं व्रजपतेः कुर्वन् स्थितिं योऽचितः।
स्वप्राणार्बुदखण्डनैर्मुरभिदं भ्रातुः सुतं तोषयेत्-
साहारे निवसन् स गोष्ठमवताद्नाम्नोपनन्दः सदा॥१५॥

गौरः कोमल धीरुदारचरितः स्निग्धो व्रजेन्द्रानुजः
श्यामश्मश्रुरलं तदीयचरणे भक्तः सुनन्दापिता।

य प्राणैः परिमच्छ्य माधवसुखं दत्ता महिष्याः परं-
सन्नन्दस्तनुते स पातु नितरां नः कासरोणां पतिः ॥१६॥

श्यामः सूक्ष्ममतिर्युवाति-मधुरो ज्योतिर्विदामग्रणीः
पाण्डित्यैर्जित-गीष्पतिर्व्रजपतेः सख्ये कृतावस्थितिः ।
कृष्णं पालयतीह यः प्रियतया प्राणार्बुदैरप्यलं
मन्त्रेणाप्युपनन्दसूनुमिह तं प्रीत्या सुभद्रं नुमः ॥१७॥

दैत्याद्भीतेरतिविकलधीः कोमलाङ्गस्य सूनोः
कृष्णस्योच्चैः सततमवने वत्सला व्यग्रचित्ता ।
कृच्छ्रैरम्बां बहुभिरभितो हन्त सन्तोष्य शूरं
दैत्यघ्नं या सुतमजनयत् साम्बिका पातु धात्री ॥१८॥

नादैर्यस्य स्फुटति परितो दिव्यविध्यण्डकोटिः
के ते तावत् किल दितिसूताः क्षुद्रकात् क्षुद्रजीवाः ।
स्नेहान्मात्रा विजयमभितो रक्षणे सन्नियुक्तं
कृष्णस्यारात् परमिह भजे हन्त धात्री-सुतं तम् ॥१९॥

मन्त्रन्यासैरिह मुररिपोस्तत्पुरोधाः पुरस्तात्
सर्वाङ्गानि प्रकटनिगमो भागुरिर्योऽभिरक्ष्य ।
आशीर्भिश्च प्रतिदिनमहो तच्छिरो जिघ्रतीदं
वन्दे तावन्मुनि-सुरपतेस्तस्य पादाब्जयुग्मम् ॥२०॥

कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः संप्रवीणः सखीनां
श्यामाङ्गस्तत्-समगुणवयो-वेश-सौन्दर्य-दर्पः ।
स्नेहाद्बन्धोः क्षणमकलनाज्जायते योऽवधूतः
श्रीदामानं हरिसहचरं सर्वदा तं प्रपद्ये ॥२१॥

गाढानुराग-भरतो विरहस्य भीत्या स्वप्नेऽपि गोकुलविधोर्नं जहाति हस्तम् ।
यो राधिका-प्रणयनिर्झरसिक्तचेता,-स्तं प्रेम विह्वलतनुं सुबलं नमामि ॥२२॥

कृत्वैकत्र गवां कुलानि परितः कृष्णेन सार्द्धं मुदा
हस्ताहस्ति-विनोदनर्म-कथनैः खेलन्ति मित्रोत्करा: ।
प्रेमाम्भोधिविधौत-गौरवमहा-पङ्कास्तदङ्काचिता-
स्तत्पादार्पित-चित्तजीवितकला ये तान् प्रपद्यामहे ॥२३॥

मुर्त्तो हास्यरसः सदैव सुमनाः कामं बुभुक्षातुरः
प्राणप्रेष्ठवयस्ययोरनुदिनं वाग्देहभङ्ग्युत्करैः ।
हास्यं यो मधुमङ्गलः प्रकटयन् संभ्राजते कौतुकी
तं वृन्दावनचन्द्रनर्मसचिवं प्रीत्या सुवन्दामहे ॥१४॥
(क्रमशः)

अनुवाद—

'कृष्ण मेरे नाती हैं'—इस गर्वसे जो लाखों-करोड़ों पर्जन्योंका अर्थात् मेघोंका भी तिरस्कार करते हैं तथा जो कृष्णके साथ सदा सर्वदा नर्म-परिहास करते हैं, श्रीकृष्णके पितामह श्रीपर्जन्य गोपको हम नमस्कार करते हैं ॥१३॥

अपने प्रिय नाती श्रीकृष्णके सुखसे (उत्पन्न) अत्यधिक गर्वके कारण जिनके श्रीचरणयुगल पृथ्वी पर नहीं पड़ते हैं, जो श्रीकृष्णके साथ हास-परिहास करती हैं, श्रीकृष्णकी पितामही—श्रीवरीयसीको नमस्कार करता हूँ ॥१४॥

जो सफेद दाढ़ीसे युक्त सुन्दर मुखमण्डलवाले हैं, जिनकी अंग-कान्ति श्याम वर्ण है, जो परामर्श-दानादि कार्योंमें परम कुशल हैं, जो व्रजराज श्रीनंद महाराजकी सभामें सर्वदा विराजमान रह कर पूजित होते हैं, जो भ्राताके पुत्र—श्रीकृष्णको अपने करोड़ों प्राणोंसे भी अधिक सुख प्रदान करते हैं तथा जिनका वास स्थान 'साहार' (नामक ग्राममें) हैं, वे उपनन्दजी सर्वदा गोष्ठकी रक्षा करें ॥१५॥

जो गौर अंगकान्तिवाले हैं, जिनकी बुद्धि अतिशय कोमल है, जो परम उदार-चरित्र और स्निग्ध स्वभाववाले हैं, जिनकी दाढ़ी श्यामवर्णकी है, जो (अगणित) भैंसोंके स्वामी हैं, जिन्होंने माधवके सुखके लिए अपने प्राणोंको न्योछावर कर रखा है, व्रजराज श्रीनन्द महाराजके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले वे नन्दानुज श्रीसन्नन्दजी हम सब की रक्षा करें ॥१६॥

श्यामवर्णवाले, तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न, अतिशय मृदु स्वभाववाले, ज्योतिर्विदोंके अग्रणी, पाण्डित्य में बृहस्पतिको भी पराभूत करनेवाले, व्रजराजके वाम भागमें रहनेवाले, श्रीउपनन्द गोपके पुत्र उन सुभद्रजीको हम प्रीति पूर्वक नमस्कार करते हैं, जो मन्त्रणादि कार्योंके द्वारा बड़े प्रेमसे अपने कोटि-कोटि प्राणोंसे श्रीकृष्णका पालन करते हैं ॥१७॥

जो दैत्योंके भयसे अतिशय व्याकुल हो पड़ती थीं, जिन्होंने अनेक कठोर व्रतादि द्वारा देवताको सन्तुष्ट करके दैत्यनाशकारी पुत्र श्रीकृष्णका जन्म कराया है तथा जो कोमल अङ्गोंवाले पुत्र श्रीकृष्ण की रक्षा करनेमें ही सदा-सर्वदा व्यग्र रहती हैं, वे परम वत्सल स्वभाववाली श्रीकृष्णकी धात्री—साम्बिका हमारी रक्षा करें ॥१८॥

जो अपनी माता साम्बिका द्वारा श्रीकृष्ण के निकट उनकी रक्षाके लिये नियुक्त किये गये हैं, जिनकी हुङ्कारसे मानों करोड़ों दिव्य ब्रह्माण्ड-समूह छिन्न-भिन्न एवं भयभीत हो उठते हैं, क्षुद्र-

क्षुद्र जीव—दैत्योंकी तो बात ही क्या, उन धातृ-पुत्र विजयका हम विशेष रूपसे भजन करते हैं ॥१९॥

जो मंत्रोंके न्यास द्वारा श्रीकृष्णके सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षाका विधान करते हैं तथा प्रतिदिन अगणित सुभाशिष प्रदान कर श्रीकृष्णका मस्तक आघ्राण करते हैं, उन सुरपति भागुरी मुनि नामक व्रजराजके पुरोहितके युगलचरणकमलोंकी बंदना करता हूँ ॥२०॥

जो स्नेहके वशीभूत होकर प्रिय श्रीकृष्णको क्षणमात्र भी न देख पाने पर पागलसे हो पड़ते हैं, श्रीकृष्णके अत्यन्त प्रणयके पात्र, सखाओंमें अति प्रवीण, श्याम अङ्गकान्तिवाले, श्रीकृष्ण जैसे गुण, वयः, वेशभूषा, सौन्दर्य और भाववाले श्रीकृष्णके नित्य सहचर श्रीदाम सखाके हम सदैव शरणापन्न हैं ॥२१॥

जो प्रगाढ़ अनुरागके वशीभूत होकर विरहके भयसे स्वप्नमें भी श्रीकृष्णचन्द्रका हाथ नहीं छोड़ते तथा जो श्रीमती राधिकाके प्रणय-निर्झर द्वारा सदैव सिञ्चित होते रहते हैं, प्रेमसे विह्वल अङ्गवाले उन श्रीसुबल सखाको हम (नित्य) नमस्कार करते हैं ॥२२॥

जो गायोंको एकत्र कर श्रीकृष्णके साथ आनन्दातिरेकसे हाथा-बाही और विनोदभरे हास-परिहास युक्त वचनोंसे क्रीड़ा करते हैं, जिन्होंने प्रेम-सागरमें गौरवरूप महापङ्कको सम्पूर्णरूपसे धो डाला है तथा जिन्होंने श्रीकृष्णके चरणोंमें चित्त, जीवन और विद्या आदि सब कुछ अर्पण कर दिया है, उन सब सखाओंकी हम शरण ग्रहण करते हैं ॥२३॥

जो हास्य-रसके मूर्त्तिमान विग्रह हैं, जो सर्वदा निर्मल हृदयवाले हैं, भोजनमें परम पटु हैं, वाणी और विचित्र अङ्गभङ्गियोंद्वारा प्राणप्रिय वयस्य श्रीकृष्ण और बलरामको सदैव हँसाते रहते हैं तथा जो बड़े कौतुकी हैं, वृन्दावनचन्द्रके उन प्रिय नर्म सखा—श्रीमधुमङ्गलकी हम सुवन्दना करते हैं ॥२४॥

(क्रमशः)

परलोक

हम ऐन्द्रिय-ज्ञानके द्वारा इहलोककी धारणाप्राप्त करते हैं। अब हमें यह विचार करना है कि ऐन्द्रिय ज्ञानके द्वारा परलोककी धारणा कहाँ तक सम्भव है ? ऐहिक इन्द्रियोंके द्वारा हम जो जो धारणाएँ प्राप्त करते हैं, वे सभी स्थूल शरीरके पतन होनेपर यहीं रह जातीं हैं और इन्द्रियाँ स्थूल शरीरसे बहिर्गत आत्माका अनुसंधान कर पानेमें असमर्थ रह जातीं हैं। इन्द्रिय-ज्ञान और उसकी परिणति—अनुमानके सहारे परलोकमें जानेकी चेष्टा की जा सकती है, परन्तु ऐसा अनुमान उस क्षेत्रमें तनिक भी सहायता कर सकता है, यह अत्यन्त सन्देहास्पद है। लौकिक प्रमाण, प्रत्यक्ष और तदनुवर्ती अनुमान केवल इस जीवन में ही असत्यका निराकरण कर सत्यकी धारणा कराते हैं। जहाँ स्थूल इन्द्रियाँ कार्य करनेमें असमर्थ हो जातीं हैं, वहाँ यह सोचकर कि इन्द्रिय-परिचालक मन बाह्य करणोंके अभावमें अन्तःकरणका संचालन कर सकता है, हम यदि स्थूल उपाधिसे मुक्त हो सकें तो हम सूक्ष्म उपाधि को साथ लेकर अन्तःकरणमें विचरण कर सकते हैं, इसे भी परलोकका एक स्तर कहा जा सकता है।

इहलोकमें पहले वासनाका उदय होता है और पश्चात स्थूल जगतमें क्रिया - कलाप सम्पन्न होता है। जहाँ स्थूल वस्तुके साथ सम्पर्क न हो, वहाँ वासना घनीभूत होकर स्थूल विषयोंमें मनको निविष्ट कराती है। इहलोकमें स्थूल-सूक्ष्म मिश्रित भाव है। जिस समय स्थूलसे सूक्ष्म पृथक् होता है उस समय हम दो पृथक्-पृथक् वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करते हैं। परन्तु वह सूक्ष्म प्रतीति स्थूलके संमिश्रण से उत्पन्न होती है। इसलिये सूक्ष्म भी स्थूलाकारमें बदल सकता है—ऐसे जन्मान्तरवादी शाक्यसिंह, जैमिनि आदि मनीषीगण मानते हैं। स्थूल-उपाधि के अभावमें सूक्ष्मोपाधि यदि स्थूल और सूक्ष्म उभय जगतसे विराम प्राप्त न करें, तो ऐसी क्रियाके द्वारा ऐहिक अशान्तिका कदापि निराकरण नहीं हो सकता है। बहुतसे विचारक सूक्ष्मोपाधिके उन्नतांश स्वर्गादिको आकाश-पुष्पकी तरह मिथ्या समझते हैं। मृत गाय कदापि घास नहीं खा सकती है, पितरोंके उद्देश्यसे प्रदत्त श्राद्ध पिण्ड और तर्पण—जलादिको प्रेतादि लोकको प्राप्त पूर्व पुरुषगण कैसे पा सकते हैं—इस विषयमें प्रत्यक्षवादियोंमें नाना प्रकारके मतभेद देखे जाते हैं। पाप-पुण्य मिश्र अवस्थामें केवल स्थूल-सूक्ष्म उपाधिमें इस जगतका अवस्थान है। केवल पुण्य-प्रभावसे स्वर्गादि गति और केवल पाप-प्रभावसे नरकादि-गतिकी प्राप्ति होती है। स्वर्ग, नरक और कर्मभूमि-यह त्रिभुवन ही अक्षज-ज्ञान और अनुमानके द्वारा प्राप्य भूमिका है। अन्य शब्दोंमें इस त्रिभुवनमें ही अथवा सप्त-व्याहृति औरसप्त अवरलोकमें इन्द्राधिष्ठित राज्यमें जीवोंकी इन्द्रिय-तर्पणता और इन्द्रिय-तत्परता लक्षित होती है।

इन्द्रियातीत राज्यमें अतीन्द्रिय पुरुष वास

करते हैं । वहाँ जीवोंकी इन्द्रियज वासना नहीं होती । नश्वर इन्द्रियाँ वहाँ तक पहुँचनेमें असमर्थ है । ऐसा परलोक विचारकोंके शब्दोंमें परोक्षवाद लक्षित चतुर्दश भुवनातीत गुणत्रय-साम्य सलिला विरजा नदीके अपर पारमें स्थित निर्विशेष-ब्रह्मलोक हैं । किसी-किसीके मतानुसार यह निर्विशेष ब्रह्म-धाम ही मुक्त पुरुषों द्वारा प्राप्त होनेवाला धाम है । इन्द्रियज-ज्ञान स्तब्ध होनेपर भोगमय वस्तुओंको पाया नहीं जा सकता । जिनके विचारमें यही परलोक है, वे इस जगतमें निर्भेद-ब्रह्मानुसन्धित्सु-कहलाते हैं । ऐसे परलोकको प्राप्त करनेके लिये नास्तिक, प्रकृतिवादी या मायावादी व्यस्त हैं । प्रच्छन्न मायावादी आत्माके नित्यधर्मरूप भक्ति या वेद प्रतिपाद्य अभिधेयको न मानकर निर्विशेष धाम को ही परलोक कह सकते हैं, परन्तु वह भी इस पार्थिक ज्ञानका आत्यन्तिक निराकरण मात्र है । वह कदापि "नित्यधाम" शब्दका वाच्य नहीं हो सकता । जहाँ अनित्यकी उपाधि प्रबल है, ऐसे अज्ञानपूर्ण ज्ञानी जिस काल्पनिक धामकी कल्पना करते हैं, वह उनके अधिकारसे बाहरका विषय है । इसलिए अन्धकारमें इस प्रकार हाथ टटोलनेपर वह परलोक हाथ नहीं लगता ।

परलोकमें इस लोककी अपेक्षा ऐसा एक स्व-तन्त्र धर्म विद्यमान है, जिसके द्वारा हम इस लोकसे परलोककी पार्थक्यकी उपलब्धि कर सकते हैं । उसी परलोक सम्बन्धी आलोचनाका आभास देनेके लिये श्रीगौड़ीय पत्रिका (भागवत पत्रिका) नामक सामयिक पत्रिका द्वारा संसाराभिनिविष्ट जीवोंको विभिन्न भाषाओंमें विभिन्न प्रकारसे अनुप्राणित करनेके लिये चेष्टा की जा रही है । आगे भी उस चेष्टाको और बलवती करनेके लिये श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके एकान्तिक भक्तगण कोई कसर न उठा रक्खेंगे । पारलौकिक ज्ञानको दूसरे शब्दोंमें परमार्थ और ऐहिक ज्ञानको पारमार्थिक भाषामें 'अनर्थ' कहते हैं ।

ऐहिक इन्द्रियजज्ञान इहलोकमें जीवको अत्यन्त क्लेश प्रदान करता है । इस उद्दाम नृत्यकी विश्राम-स्थली होनेके कारण निर्विशेष भावको परम प्राप्य निरूपण करते हैं । जो परमार्थको जानते हैं, वे जीवोंकी मुक्त अवस्थाको भगवानकी तटस्थता शक्ति बतलाकर बद्धजीवोंको उपदेश देते हैं । भगवानके पारमात्म्य-भावको शुद्ध जीवात्माका ग्रहणीय विषय मानकर वैदान्तिक अपरोक्षवादकी अवतारणा करते हैं । यही जीवात्माकी अधोक्षज सेवा है । 'श्रीगौड़ीय पत्रिका (श्रीभागवत पत्रिका) सामयिक पत्रकी केवल पारमार्थिक बातें विचार करनेसे अक्षज ज्ञानवादी सन्तुष्ट नहीं होते । अतः वे उनका विरोध करते हैं । फिर भी सज्जन पुरुष सर्वदा अधोक्षज सेवाके आचार-प्रचारमें नियुक्त रहते हैं ।

—जगद्गुरु श्रीलभक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(जीव-तत्त्व)

३०—भगवानके कितने प्रकारके अंश हैं ?

भगवानके अंश दो प्रकारके हैं—स्वांश और विभिन्नांश। चतुर्व्यूह अवतारगण आदि सभी स्वांश-विस्तार हैं। जीव ही विभिन्नांश हैं। स्वांश और विभिन्नांश में यही भेद है कि स्वांशगण कृष्णतत्त्व के साथ अभिन्न अभिमानमें सर्वदा सर्वशक्ति सम्पन्न हैं एवं कृष्णेच्छासे ही उनकी इच्छा है, उनमें स्वतंत्रता नहीं है। विभिन्नांशगण कृष्णतत्त्वसे नित्य भिन्नाभिमान युक्त हैं। अपने क्षुद्र स्वरूपानुसार वे अतिशय क्षुद्रशक्ति विशिष्ट एवं कृष्णेच्छासे उनकी इच्छा पृथक् है।"

—श्रीम० शि० ६ वाँ प०

३१—परमेश्वरके अंश कहनेका क्या तात्पर्य है ?

"ईश्वर अविभाज्य चिद्वस्तु हैं, अतएव काष्ठ-पाषाणकी तरह उनके खण्ड-खण्ड कर उन खण्डोंको 'अंश' नहीं कहा जा सकता। वैसा अंश होनेसे मूल वस्तुका ही क्षय होता है। अतएव एक दीपसे जिस प्रकार बहुतसे दीप जलाये जाते हैं, वैसा सादृश्य यहाँ कुछ अंश तक लिया जा सकता है। जड़ीय उदाहरण सर्वदा ही अपूर्ण है। जिस प्रकार चिन्तामणि स्वयं अविकृत रहकर स्वर्ण प्रसव करती है, वैसा उदाहरण भी आंशिक उदाहरणमात्र है। ईश्वरके दो प्रकारके अंश हैं—एक अंशको स्वांश कहते हैं और दूसरा विभिन्नांश। जिस प्रकार एक महादीपसे अन्य महादीप जलाये जाने पर पूर्व महादीपकी तरह वह सर्वशक्ति प्राप्त होता है, तथापि पूर्व महादीप पूर्ण रहता है, वैसे ही स्वांश-लक्षण पुरुषावतार और लीलावतारमें देखे जाते हैं। विभिन्नांशके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार चिन्तामणिसे क्षुद्र मणि और स्वर्ण उत्पन्न होते हैं और चिन्तामणिकी महाशक्तिको प्राप्त नहीं होते, परन्तु उसका धर्म थोड़ा-सा अणु-अंशमें प्रकाश पाता है, वैसे ही जीवके सम्बन्धमें कहा जा सकता है। ब्रह्मादि सभी जीव ईश्वरकी इच्छासे उत्पन्न होकर ईश्वरके अनुगत न रहने पर विकृत होते हैं, और अपने-अपने कार्यका दायित्व और अस्वातंत्र्य प्राप्त करते हैं। किसी-किसी विभिन्नांशमें अधिक शक्ति रहती है और किसी-किसी विभिन्नांशमें अत्यन्त कम। विभिन्नांश कदापि चिन्तामणिके प्रभूत (सम्पूर्ण) धर्म प्राप्त नहीं करता।"

—'जीवतत्त्वं' श्री भा० मा० ७।२

३२—जीव क्या सर्वमय कर्त्ता है ?

"जीव हेतु कर्त्ता है और ईश्वर प्रयोजक कर्त्ता हैं। जीव अपने कर्मके कर्त्ता होकर जिस फलभोग के अधिकारी होते हैं और जिन भावी कर्मोंके उपयोगी होते हैं, उन सभी फलभोग और कार्योंमें प्रयोजक कर्त्ता होकर ईश्वर का कर्त्तृत्व है। ईश्वर फलदाता हैं और जीवगण फलभोक्ता हैं।"

—जै० ध० १६ वाँ अ०

३३—जीव क्या नित्य वस्तु है कि अनित्य ?

"जीवको नित्य भी कहा जा सकता है एवं अनित्य भी कहा जा सकता है। जीवके कारण ही परमेश्वरकी शक्ति है। यह शक्ति नित्या है, अनादि और अनन्त है, अतएव कारण-गुणका अवलम्बन कर जीवकी नित्यता स्वीकार की जा सकती है।* इस अनादि अनन्त शक्तिके परिणाम स्वरूप जीव कारण गुणके द्वारा नित्य हैं। परन्तु ईश्वरकी इच्छा सर्वापेक्षा बलवती है। अतएव यदि कभी ईश्वरकी इच्छा हो कि जीवका लय करें, तो अवश्य लय हो सकता है, इसीलिए जीवको अनित्य भी कहा जा सकता है।"

—त० सू० १२ वाँ सूत्र

३४—जीव क्या पूर्णब्रह्मत्व प्राप्त कर सकता है ?

"जीव ब्रह्मस्वरूप होने पर पूर्णब्रह्मत्वको प्राप्त नहीं होते क्योंकि ब्रह्म स्वयं निर्विकार और अपरिणत है। परन्तु परब्रह्मके जीवशक्तिसे जीव उत्पन्न होकर परिणामको प्राप्त हुए हैं। अतएव जीव और ब्रह्ममें इस विषयमें विशेष भेद है।"

३५—किस समय जीव शान्ति लाभ कर सकता है ?

"जब तक जीव अपने कर्मफल भोग करते हैं, तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि वे स्वयं दुर्बल हैं, अक्षम और असम्पूर्ण हैं, परन्तु जब वे ईश्वरके शरणापन्न होते हैं, तब उन्हें और शोक नहीं होता।"

—त० सू० १३ वाँ सू०

३६—भगवद्बहिर्मुख कौन हैं ?

"जिनके हृदयमें कृष्णभक्तिका स्वरूप उदित नहीं हुआ है वे ज्ञान-कर्मका आश्रय लेकर सर्वदा दम्भयुक्त होते हैं। अतएव वे ही भगवद्बहिर्मुख हैं। बहुदेवसेवाधर्मी, निर्भेदज्ञान-पिपासु मायावादी और वेदशास्त्र विरोधी नास्तिक आदि व्यक्तिगण भगवद्बहिर्मुख हैं।"

—तत्तत्कर्मप्रवर्त्तन, स० तो० ११।६

३७—विषयी, कर्मी और ज्ञानीके चेष्टामें क्या पार्थक्य है ? किस समय जीव अन्तर्मुखी होता है ?

"इस देहका इन्द्रियतर्पण ही विषय-चेष्टा है। परकालमें इन्द्रियतर्पण ही कर्मीकी चेष्टा है। अपना सब कष्ट दूर करना ही ज्ञानीकी चेष्टा है। इन तीन पदोंका अतिक्रम करने पर ही जीव अन्तर्मुखी होता है।"

—'भजन-प्रणाली' ह० चि०

३८—बहिर्मुख लोगोंका क्या विचार है ?

"बहिर्मुख लोग सोचते हैं—हम बुद्धिबलसे शिल्प-विज्ञानादि उन्नति कर अपने सुखकी वृद्धि कर रहे हैं।' वस्तुतः कृष्णकी इच्छासे ही यह सब कुछ होता है—इस बातको वे कदापि स्मरण नहीं करते।"

—'अहं मम भावापराध' ह० चि०

३९—कौनसे व्यक्ति ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानते ? जीवके नास्तिकताके द्वारा ईश्वरकी क्या हानि होती है ?

"जो सभी लोग बाल्यकालसे असत्सङ्गमें कुतर्क शिक्षा करते हैं, वे क्रमशः कुसंस्कार परवश

होकर ईश्वरका अस्तित्व नहीं मानते। उससे उनका ही नुकसान छोड़कर ईश्वरकी क्या हानि हो सकती है ?"

—चै० शि० १।१

४०—क्या आध्यक्षिकता द्वारा ईश्वरका अस्तित्व उपलब्ध होता है ?

"कुछ लोग दुर्भाग्यवशत: ईश्वर विश्वास नहीं करते। उनका ज्ञानमय चक्षु मुद्रित है। जड़ आँखों से ईश्वरका आकार न देख पाकर वे सोचते हैं कि ईश्वर नामकी कोई वस्तु नहीं है। जिस प्रकार जन्मान्ध लोग सूर्यके प्रकाशकी उपलब्धि नहीं कर पाते, उसी प्रकार नास्तिक व्यक्ति ईश्वर-विश्वास करनेमें अक्षम हो उठते हैं।"

—चै० शि० १।१

४१—जीवके स्वरूपका परिचय किस समय पाया जाता है ?

"जिस प्रकार भस्माच्छादित अग्नि भस्म नहीं है और भस्मके दूर करने पर अपने उत्ताप और प्रकाश द्वारा परिचित होते हैं, उसी प्रकार जीवके स्थूल और लिङ्ग-सत्ताके दूर होने पर ही जीवके स्वरूपका परिचय पाया जाता है। स्थूल और लिङ्गरूप भस्मके दो स्तर (आवरण) जीवरूप अग्निको आच्छादन किये हुए हैं। जब तक वे दोनों आवरण दूर नहीं किये जाते, तब तक क्या जीवका कोई परिचय नहीं है ? हाँ, अवश्य है। जिस प्रकार भस्माच्छादित अग्निके निकट बैठने पर थोड़ा-सा उत्ताप मिलता है, वैसे ही उक्त दो आवरणोंसे आच्छादित जीव भी कुछ हद तक अपना परिचय प्राप्त होते हैं।"

—'ज्ञान' सत्सङ्गिनी स० तो० ८।३

४२—जीवका आरोपित संसार कैसा है ?

"जीव लिङ्गशरीरको मैं मानकर अपने मन-बुद्धि-अहंकार गठित एक नये शरीरकी कल्पना करते हैं। उस लिङ्ग-शरीरके सम्बन्धसे मनोविज्ञान और पदार्थ-विज्ञानका सम्मान करते हुए उन्हें अपना सम्पत्ति मानकर भ्रान्त हो रहे हैं। भूतमय स्थूल देहमें अहं ज्ञान होनेके कारण 'मैं अमुक भट्टाचार्य हूँ' या 'अमुक साहब हूँ' मानकर कितना रङ्ग कर रहे हैं। कभी मरते हैं, कभी जन्म ग्रहण करते हैं, कभी सुखसे फूले नहीं समाते, कभी दु:खसे सूख जाते हैं। धन्य परिवर्त्तन ! धन्य माया का खेल ! पुरुष होकर महिलाके साथ विवाह करते हैं। स्त्री होकर एक पुरुषका हाथ धारणपूर्वक एक प्रकाण्ड संसारका पत्तन कर रहे हैं। संसारमें गुरु-जनोंकी सेवा, पाल्यजनका पालन, राजाका भय, और शत्रुसे घृणा आदि करते हैं। कुलवधू होकर कितनी लज्जा कर रहे हैं और लोकनिन्दाका भय कर रहे हैं। इस छाया-बाजी संसारके मिथ्या सम्बन्धके द्वारा जड़ीभूत होकर अपने परिचयसे बहुत दूर पड़े हुए हैं ! इस प्रकारके आरोपित संसार में अवस्थित जीवकी क्या अवस्था है ! संसारके कुछ आरोपित विधियोंको अपना सब कुछ मानकर नित्य पतिरूप कृष्णको एकदम भूल गये हैं।"

—'प्रीति' स० तो० ८।६

४३—कौनसे व्यक्ति अवैष्णव हैं ?

"भक्ति शून्य पण्डित, धनी, बलवान, ब्राह्मण, राजा, प्रजा आदि सभी व्यक्ति अवैष्णव हैं।"

—'वैष्णवोंका व्यवहार दुःख' स० तो० १०।२

४४—सद्विचारका क्या फल है ?

"आत्मबोध ही सद्विचारका फल है।"

—चै० शि० २।२

४५—क्या निरीश्वर मानव पशुसे श्रेष्ठ हैं ?

"सेश्वर नहीं होनेसे नरजीवन जितना ही सभ्य क्यों न हो, जितना ही जड़विज्ञान सम्पन्न क्यों न हो, या जितना ही नैतिक क्यों न हो, पशु जीवनकी अपेक्षा कदापि श्रेष्ठ नहीं हो सकता।"

चै० शि० १।१

४७—कौन 'मनुष्य' पद वाच्य नहीं है ?

"जगत क्या है, मैं कौन हूँ ? किन्होंने जगतकी सृष्टि की है, मेरा कर्त्तव्य क्या है और कर्त्तव्य करने से मेरा क्या होगा ?—ऐसा विवेक जिनमें नहीं है, वे मनुष्यमें ही नहीं गिने जा सकते।"

चै० शि० २।२

४७—भाग्यके प्रवाहमें सत्ताका विसर्जन करने से क्या गति होती है ?

"जो व्यक्ति मृत मत्स्यकी तरह भाग्यके प्रवाह में अपनी सत्ताका विसर्जन करते हैं, वे इस भव-समुद्रमें बहते-बहते कभी ज्वारसे आगे बढ़ते हैं और कभी भाटेसे पीछे हटते हैं और अपने अभिलषित स्थानमें कदापि पहुँच नहीं पाते।" चै० शि० ३।१

४८—बद्धजीवका क्या लक्षण है ?

"नरकस्थ होकर भी पुरुष देहत्याग करनेकी इच्छा नहीं रखते। नरकसे निवृत्ति लाभ कर देव-माया द्वारा विमोहित होते रहते हैं।"

—'बद्धजीव लक्षणम्' श्री भा० मा० ८।१०

४९—विषयी लोगोंका क्या स्वभाव है ?

"विषयी व्यक्ति कृष्णकथा सुनने या कहनेका समय नहीं पाते। पुण्यकर्म ही करें या पापकर्म ही क्यों न करें, विषयी लोग आत्मतत्त्वसे सर्वदा ही दूर रहते हैं।"

—'जनसंग' स० तो १०।११

५०—बद्धजीवका क्या स्वभाव है ?

"जिस प्रकार मेघ द्रष्टाके आँखोंको आच्छादन करता है और सूर्यका आच्छादन नहीं करता, तथापि मेघाच्छादित जड़चक्षुविशिष्ट व्यक्ति सूर्यको मेघाच्छादित समझते हैं, उसी प्रकार बद्धजीव अपनी-अपनी मेघाच्छादित इन्द्रिय और बुद्धिके द्वारा गोकुल या अप्राकृत तत्त्वके सम्बन्धमें मायिक धारणा करते हैं।"

—ब्र० स० ५।२

५१—मन क्या चेतन वस्तु है ?

"जो वृत्ति जीवके साथ सर्वावस्थामें नहीं रहता उसे नित्यवृत्ति नहीं कहा जा सकता। इसलिए मन औपाधिक वृत्ति मात्र है। उपाधिकत्व स्वीकार करनेसे आत्मवृत्तिको नहीं कहा जा सकता। अत-एव मन स्वभावतः प्राकृत है। परन्तु अपनी सूक्ष्मता के कारण मन अनेक प्राकृत पदार्थोंसे श्रेष्ठ है।"

—त० सू० ३० वाँ सूत्र

५२—प्राकृत काल किसे कहते हैं ?

"जीवके मुक्तावस्थामें भी प्राकृत काल स्वीकार किया नहीं जा सकता। केवलमात्र बद्धावस्थामें संयोग, वियोग, अस्तित्व और कर्म—सभी कालके अधीन है, ऐसा जान पड़ता है। अतएव बद्धजीव के प्रकृति-सम्बन्धको ही प्राकृत काल कहा जा सकता है।"

—त० सू० २५ वाँ सूत्र

(क्रमशः)

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीराधाष्टमी

नन्दीश्वर पर्वतके दक्षिणमें वरसानु नामक एक पर्वत है। उस पर्वतकी घाटीमें वृषभानु नामक एक गोपराज निवास करते थे। महाराज वृषभानु अपनी सहधर्मिणी कृत्तिकादेवीके साथ बड़े प्रेमसे श्रीहरि की आराधना किया करते थे। भाद्रपदकी शुक्ला-ष्टमी तिथि, विशाखा नक्षत्रमें दोपहरके समय रानी कृत्तिकादेवीको एक कन्या आविर्भूत हुई। उस समय भी श्रीकृष्णके जन्मकालकी भाँति चारों ओर सुप्रसन्नता छा गई। भक्तोंके हृदयमें बहुत ही आनन्द हुआ। गोपराज वृषभानुके आनन्दकी सीमा न रही। वे रत्नभानु और सुभानु आदि भाईयोंके साथ आनन्दसे नाच उठे। महाभाग्यवती कृत्तिका देवी उस कन्याकी चन्द्रकला जैसे मुख-कमलको देखकर आनन्दसे सुध-बुध खो गई। सुरपुर और व्रजपुरमें आनन्दोत्सव मनाया गया। यही कन्या 'वृषभानु-नन्दिनी श्रीराधिका'के नामसे प्रसिद्ध हुई।

ततः आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीड़मभून्नृप॥
(भा. १०।५।१८)

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकसे व्रजरमणी-शिरो-मणी श्रीमती राधिकाजीका आविर्भाव सूचित होता है। श्रीकृष्ण व्रजमें नित्य निवास करते हैं। श्रीकृष्णको नित्य विहार-भूमि होनेके कारण व्रज सदा सब समृद्धियोंसे परिपूर्ण रहता है। व्रजभूमि श्रीकृष्णके आविर्भावके समयसे राधिका आदि व्रजरमणियोंका विहारस्थल हुआ। श्रीनन्द-गोकुल में जब श्रीकृष्ण गुप्तरूपसे विहार करते हैं, तब श्रीराधिका आदि व्रजरमणियाँ भी गुप्तरूपसे उनके साथ वहाँ विहार करती हैं। और जब श्रीकृष्ण प्रकट रूपमें विहार करते हैं, तब व्रजरमणी-शिरो-मणि श्रीराधिकाजी भी अपने कायव्यूहरूप गोपियों के साथ प्रकट रूपमें विहार करती हैं। 'तोषणी' और 'सन्दर्भ' में ऐसा ही बतलाया गया है।

प्रेमकी विशिष्टताके कारण श्रीमती राधिका सब लक्ष्मियोंसे भी श्रेष्ठ हैं। श्रीमती राधिका कृष्णप्रेमोत्कर्षकी पराकाष्ठा रूपिणी होनेके कारण सब शक्तियाँ उनकी सेवा करती हैं। वे सर्वलक्ष्मीमयी हैं--सब शक्तियोंकी अंशिनी हैं। इसलिये दूसरी-दूसरी कृष्ण-प्रेयसियोंकी अपेक्षा श्रीमती राधिका सर्वश्रेष्ठ हैं। पद्मपुराणके कार्त्तिक-माहात्म्यमें शौनक-नारद-संवादमें कहा गया है--

"वृन्दावनाधिपत्यञ्च दत्तं तस्यै प्रतुष्यता।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने॥"

श्रीकृष्णने श्रीमती राधिकाको वृन्दावनका आधिपत्य प्रदान किया है। प्राकृत या देवीधाममें दुर्गा देवी अधिकारिणी हैं, किन्तु देवी धामके उस पार—विरजा, ब्रह्मलोक और वैकुण्ठके पार सबसे ऊपर स्थित गोलोकधाममें श्रीराधिका ही एकमात्र अधीश्वरी हैं। मत्स्यपुराणमें बतलाया है—

"वाराणसीमें विशालाक्षी, पुरुषोत्तममें विमला, द्वारकामें रुक्मिणी और वृन्दावनमें राधिकाजी हैं।"

इस उक्तिका अवलम्बन कर श्रीजीवगोस्वामी-पादने षट् सन्दर्भमें कहा है,-"शक्तित्वमात्र-साधरण्येनैवलक्ष्मी-सीता-रुक्मिणी - राधानामपि सेव्या सह गणनम्। वैशिष्ट्यन्तु लक्ष्मीवत् सीतादिस्वपि ज्ञेयम्। तस्मान्न देव्यासह लक्ष्म्यादीनामैक्यम्। श्रीरामतापनी-श्रीगोपालतापन्यादौ तासां स्वरूप-भूतत्वेन कथनात्। श्रीराधिकायाश्च यामले पूर्वो-दाहृदपद्यत्रयानन्तर, "भुजद्वययुतः कृष्णो न कदा-चिच्चतुर्भुजः। गौर्य्येकया युतस्तत्र परिक्रीड़ति सर्वदेति।" अत्र वृन्दावनविषयक तत्सहित सर्वदा क्रीडित्वलिङ्गावगतर्न परस्पराव्यभिचारिणी स्वरूप शक्तित्वम्। सतीष्वप्यन्यासु, एकया इत्यनेन तत्रापि परममुख्यत्वमभिहितम्।" उपरोक्त श्लोकमें देवी-धामेश्वरी श्रीदुर्गादेवी या मायाशक्तिके साथ श्री लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी और श्रीराधाजीका उल्लेख है। इससे सबको एक समान समझना उचित नहीं है। देवीधामेश्वरी महामाया या दुर्गादेवी कृष्ण की स्वरूप शक्तिकी बहिरंगा—प्रकाश हैं। शक्ति-तत्त्वकी दृष्टिसे लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी, राधा-सभी एक समान हैं, परन्तु रसकी दृष्टिसे इनमें तारतम्य है। इसलिये दुर्गादेवीकी लक्ष्मी, सीता, रुक्मिणी, श्रीराधा—इनसे तुलना नहीं दी जा सकती। श्रीरामतापनीमें श्रीसीतादेवीका और श्रीगोपालतापनी आदिमें श्रीरुक्मिणी और श्रीराधिकाजीका स्वरूप-तत्त्व बतलाया गया है। श्रीयामलमें कहा गया है कि "श्रीकृष्ण चार भुजा-वाले नहीं हैं। वे दो ही भुजावाले हैं। वे एक गोपीके साथ मिलकर सदा क्रीड़ा करते हैं।" यहाँ द्विभुज श्रीकृष्ण वृन्दावनमें एक गोपीके साथ सदा क्रीड़ा करते हैं—इससे श्रीकृष्ण और श्रीराधाके परस्पर अव्यभिचारसे स्वरूप-शक्तित्वका निश्चय होता है। अन्य गोपियोंके रहते हुए भी वे एक गोपी के साथ क्रीड़ा करते हैं—इस प्रकार उल्लेख होनेके कारण श्रीराधाकी ही प्रधानता लक्षित होती है। श्रीराधा स्वरूप-शक्ति हैं, इस सम्बन्धमें बृहद्गौतमीय तन्त्रमें कहा गया है कि श्रीराधा 'सर्वलक्ष्मीमयी', 'सर्वकान्तिमयी', 'भुवन-मोहन-मन-मोहिनी', 'परमाशक्ति' हैं। मूलाश्रया राधिका जीसे ही आश्रय-वैभव स्वरूप व्रजललनाएँ, रेवती आदि प्रकाशाश्रय वृन्द, द्वारका आदिमें रानियाँ, वैकुण्ठमें लक्ष्मीगण, विष्णु अवतारोंमें सीता आदि शक्तियाँ और नित्य-बद्ध जीवोंके लिये कारागार या दुर्गकी रक्षा करनेवाली स्वरूप-शक्तिकी छाया-स्वरूपा बहिरंगा शक्ति दुर्गादेवी प्रकाशित हुई हैं।

ऋक्के परिशिष्ट श्रुतिमें भी श्रीराधिकाजीको श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति कहा गया है। जैसे—"राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका।" निज-जन - समूहमें श्रीराधाके साथ श्रीमाधव विहार करते हैं। माधव द्वारा राधिकाजी सर्वतोभावेन प्रकाश पाती हैं।

वेदान्तके अकृत्रिम-भाष्य श्रीमद्भागवतके प्रथम श्लोक ("जन्माद्यस्य") में श्रीराधाकृष्णकी परम-माधुरीका प्रकाश हुआ है—

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञःस्वराट्
तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः।

तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥"
(भा, १।१।१)

अनु + अय—अन्वयः, अनु-पश्चात्, 'अय-'इ' (इन्-गत्यर्थे) धातुसे बना है। अपनी परमानन्द-शक्ति-स्वरूपिणी श्रीराधिकाके साथ सदा प्रेम करने या आसक्त रहनेके कारण श्रीकृष्ण 'अन्वय' हैं। स्वरूपशक्ति श्रीराधिकाजीके बिना कृष्णकी पृथक् स्थिति नहीं है। इसीसे श्रीकृष्ण अन्वय हैं। श्री कृष्णकी इतरा अर्थात् द्वितीया श्रीराधा हैं। श्रीराधा और कृष्ण एक स्वरूप होनेपर भी आस्वादक और आस्वाद्यके रूपमें दो रूप हैं। श्रीकविराज गोस्वामीने कहा है—

"कस्तुरी और गन्ध दोनों जैसे अविच्छेद।
अग्नि और ज्वालामें जैसे नहीं कुछ भेद॥
राधाकृष्ण वैसे सदा एक ही स्वरूप।
लीलारस आस्वादन को धरे दो रूप॥"
(चै. च. आ.४।९७-१८)

जिन अन्वय (श्रीकृष्ण) और इतरा (श्रीराधा) से 'आद्य' अर्थात् आदिरसका जन्म है (मैं उन दोनोंका ध्यान करता हूँ) श्रीराधा और कृष्ण ही आदिरस - विद्याके परम आश्रय हैं। जो 'अर्थ' समूहमें अर्थात् उसके विलाप-कलापमें 'अभिज्ञ'—(विदग्ध) हैं, और जो स्वरूपशक्ति ऐसे विलास-विदग्ध स्वरूपमें विराजते हैं—विलास करनेके कारण ही 'स्वराट्' हैं, जिन्होंने 'आदिकवि' अर्थात् सबसे पहले अपनी लीलाका वर्णन आरम्भ करने वाले श्रीवेदव्यासके हृदय द्वारा ही 'ब्रह्म'—अपनी लीलाके प्रतिपादक शब्दब्रह्मका विस्तार किया है अर्थात् जिन्होंनेके आरम्भसे ही समस्त भागवतको मेरे (श्रीवेदव्यासजीके) हृदयमें प्रकाशित किया था, उन दोनोंका मैं ध्यान करता हूँ। इस प्रसंगमें (भा १।७।४) भक्तियोगेन मनसि' श्लोक ही आलोच्य है। जिन श्रीराधाके विषयमें 'सूरय'—शेष आदि भी मोहको प्राप्त होते हैं अर्थात् स्वरूप, सौन्दर्य आदि गुण द्वारा मोहित होते हैं।

अग्नि, जल और मिट्टी इनका जैसा विनिमय या परस्पर स्वभाव - विपर्यय होता है, वैसे ही श्रीराधा और श्रीकृष्णमें प्रेम विनिमय होता है।

जिनमें श्रीराधाकी विद्यमानतासे त्रिसर्गकी श्री-भू-लीला शक्ति है, उन तीनों शक्तियोंका आविर्भाव अथवा द्वारका, मथुरा और वृन्दावन—इन तीनों स्थानोंकी तीन शक्तियोंका आविर्भाव या वृन्दावनमें रस-दृष्टिसे सुहृद, उदासीन और प्रतिपक्ष नायिकाके रूपमें तीन प्रकारकी व्रज देवियोंका 'आविर्भाव मृषा (मिथ्या) है। अर्थात् सौन्दर्य आदि गुण-सम्पद् द्वारा श्रीराधाके बिना इनसे श्रीकृष्णका कोई प्रयोजन नहीं है। कविराज गोस्वामी कहते हैं—

"राधासङ्ग क्रीड़ारस- वृद्धिका कारण।
और सब गोपियाँ हैं रस उपकरण॥
कृष्णकी वल्लभा राधा कृष्ण-प्राणधन।
बिना राधा सुख कारण नहीं गोपीगण॥"
(चै. च. मा. ४।२७-२१८)

शतकोटि गोपियोंसे नहीं काम-निर्वापण।
इसीसे हो अनुमान श्रीराधिकाके गुण॥
(चै. च. आ ८।१।११५)

इन दोनों अर्थात् श्रीराधामाधवके स्वयं प्रभाव से लीलाका प्रबन्ध करनेवाली जरती आदि और प्रतिपक्ष नायिकाओंका कुहक या माया सदा परास्त होती है।

यह सब रूपमें सत्य-नित्य-सिद्ध अथवा परस्पर विलासादि द्वारा आनन्द देनेमें कृतसत्य अर्थात् निश्चल हैं, अतएव पर हैं—ऐसा अन्यत्र और कहीं नहीं दिखाई देता। गुण लीलादिके द्वारा यह विश्व को विस्मय देनेवाला हेतु सबसे उत्तम हैं। ऐसे ही युगल श्रीराधा माधवका ध्यान श्रीवेदव्यास अपनी मण्डलीके शुकदेव आदिके साथ करते हैं।

यदि स्वरूप शक्ति श्रीमती राधा सहित श्रीकृष्ण ही एकमात्र परम सत्य हैं और परम सत्याश्रयी अप्राकृत रसिक भक्तोंके नित्य ध्येय वस्तु हैं, तो श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेव गोस्वामीने श्रीराधिकाका नाम क्यों नहीं लिखा ?

भागवतगणोंने इसका उत्तर दिया है। वास्तविक भजन करनेवाले प्रेमी-पुरुष अपने भजन-रहस्य जहाँ-तहाँ प्रकाशित नहीं करते। परन्तु अन्यान्य योग्य व्यक्तियोंको उसे प्रेम-सागरमें डुबानेके लिये प्रभुकी महिमाका कीर्तन करते हैं। श्रीशुकदेव गोस्वामीने भी श्रीमद्भागवतमें परम - रसके चमत्कार-माधुर्यकी पराकाष्ठा, मूल-आश्रया गोविंद-आनन्दिनी श्रीमती राधिकाकी महिमाको "अनयाराधितो नूनं", (भा. १०।३०।२८), "वरिष्ठं सर्वयोषिताम्" (भा. १०।२०।२६) और (१० ३०।२६) प्रभृति कितने ही श्लोकोंमें कहा है। किन्तु सर्वसाधरणमें एकमात्र सबसे श्रेष्ठ भजनीय नामको स्पष्ट रूपसे प्रकट नहीं किया। श्रीशुकदेव गोस्वामी यद्यपि कृष्ण-रसके आवेशमें श्रीकृष्ण और उनकी प्रिया रुक्मिणी आदि नामका सदा ही कीर्तन किया करते थे तथापि श्रीराधा आदि समर्थारति मूर्त्ति व्रज गोपियोंका नाम कभी ले नहीं सकते थे। मर्यादा या गौरवसे ऐसा नहीं करते थे। परन्तु बहुत ही विस्तृत, अति-विलक्षण, परम-प्रकटित प्रेमानल-शिखाके तापसे दग्ध गोपियोंका नाम लेनेसे, उनकी याद करने, तीक्ष्ण प्रेमानलसे उठा हुई ऊँची-चिनगारियोंसे छू जाते ही विकलता उत्पन्न होनेके कारण व्रज वधूओंका नाम नहीं लेते थे। इसी कारणसे श्रीमद्भागवतमें गोपियोंकी कथा का सामान्यरूपसे वर्णन किया गया है अर्थात् नाम लेकर विशेष-रूपसे उनका वर्णन नहीं हुआ।

श्रीमद्भागवतमें राधिका आदि प्रधान गोपियों का नाम न होनेसे उपकार ही हुआ है। परम-गुप्त भजनीय-निधि गोपी शिरोमणि श्रीराधिकाजीकी कथा अज्ञ-रूढ़ि और साधारण-रूढ़िसे परिचालित जगत्की योग्यताके आगे अप्रकाशित है। जीवका स्वरूप 'कृष्णका नित्यदास' होनेपर भी परमसत्य-स्वरूप भगवान प्रेमी भक्तोंके आगे ही प्रकट होते हैं। आत्माका लौल्य ही उसका मूल्य है, जो ऐश्वर्यशिथिल या प्राकृत अहङ्कारवाले मनुष्योंके लिये असम्भव है। ऐश्वर्यकामगन्धहीन प्रेमिक पुरुषोंमें उस अप्राकृत लौल्यकी अधिकताके कारण श्रीकृष्ण उनसे जीते जा सकते हैं। श्रीराधिकाजीके उपासना के बिना श्रीकृष्ण-भजनकी चेष्टा वास्तवमें विष्णुकी ही उपासना है। वह यथार्थ कृष्ण-भजन नहीं है।

मधुर रसके अतिरिक्त शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्यरसके भक्तोंके लिये भी श्रीराधिकाजी उपास्य हैं।

शुकदेव गोस्वामीने श्रुतिगुह्य श्रीराधाजीके नामको स्पष्ट-रूपसे प्रकाश न कर एक प्रकारसे प्रेमी भक्तोंका पालन और ऐश्वर्यशिथिल भक्त और अभक्तोंको मोहित किया है। कविराज गोस्वामी कहते हैं—

अतएव कहि कृष्ण करके निगूढ़।
समझें रसिक भक्त ना समझें मूढ़॥
अभक्त ऊँटों का इसमें ना होय प्रवेश।
फिर भी मनमें होय मुझे आनन्द विशेष॥
जहि लगि कहे भय सो यदि न जाने।
इसके सिवा और सुख क्या त्रिभुवनमें माने॥
(चै. च. आ ४ थं. प. २७२,२७५, २७६)

विना राधा भजनके कृष्ण भजन हो ही नहीं सकता। विना राधाके माधवके नामका अस्तित्व नहीं है। विना स्वरूप शक्ति राधाके शक्तिमान अद्वय तत्त्व कृष्णका अस्तित्व नहीं है।

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी(विलाप-कुसुमाञ्जलि) में कहते हैं—

"आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथञ्चित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि।
त्वञ्चेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं मे
प्राणैर्वृजेन च वरोरु बकारिणापि॥"

हे वरोरु! इस समय मैंने अमृत सागर रूपी आशातिशय कदम्बमें बड़े ही कष्टसे दिन बिताये। यदि तुम मुझपर कृपा न करो, तो इस जीवन या व्रजवास—अधिक क्या कहूँ—श्रीकृष्णका भी मुझे प्रयोजन नहीं। ठाकुर भक्तिविनोदने गाया है—

राधा भजनमें यदि मति नहीं दिया।
कृष्ण भजन उसका अकारण गया॥
धूपसे रहित सूरज नहीं जानूँ।
राधा-विरहित माधव ना मानूँ॥
केवल माधव पूजे सो है अज्ञानी।
राधाका अनादर करते अभिमानी॥
कभी न करना ऐसों का सङ्ग।
चित्त में चाह है यदि व्रज रस रङ्ग॥
राधिका दासी यदि होय अभिमान।
शीघ्र ही मिले उसे गोकुल-कान॥
ब्रह्मा-शिव-नारद-श्रुति-नारायणी।
राधिकाके पद-रज पूजते हैं मानी॥
उमा-रमा-सत्या-शची-चन्द्रा-रुक्मिणी।
राधा अवतार, कहे प्रमाण-वाणी॥
राधा-परिचर्या है जिसका धन।
भक्तिविनोद माँगे उसके चरन॥

एकमात्र विषय-विग्रह श्रीगौरसुन्दरने ही प्रकट किया है कि आश्रय-भावको अङ्गीकार करने वाले जीवमात्रको मूल-आश्रय श्रीराधिकाजीकी सेवा करना चाहिये। अणु-सच्चिदानन्द जीव विभु सच्चिदानन्द अद्वय ज्ञान सन्धिनी शक्तिके अधिष्ठातृ-विग्रह श्रीबलदेव, सम्वित् शक्तिके अधिष्ठातृ विग्रह श्रीकृष्ण और ह्लादिनी शक्ति-स्वरूपा गोविन्दानन्दिनी राधिकाजीके सेवाके विना कभी अपने स्वरूपको

नहीं पा सकता। मायाविलासी भोगी या मायावादी ब्रह्मका अनुसन्धान करनेवाले त्यागीके लिये सच्चिदानन्दमय भगवानकी उपलब्धि करना निरर्थक है। ये आत्मघाती हैं। मधुररसमें बलदेव ही श्रीराधिकाजी सखी अनंगमंजरीके रूपसे श्रीराधा माधवकी सेवा करते हैं। 'श्रीराधारस सुधानिधि' में लिखा है—

"प्रेमानामाद्भुतार्थःश्रवणपथमतःकस्य नाम्नां महिम्नः।
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिन-महामाधुरीषु प्रवेशः।
को वा जानाति राधां परमरस चमत्कार माधुर्यसीमा
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार॥"

'प्रेम' नामक परमपुरुषार्थको किसने सुना था? श्रीनामकी महिमाको ही कौन जानता था? वृन्दावनके गहन-महामाधुरी कदम्बमें किसने प्रवेश किया था? परमचमत्कार अधिरूढ़ महाभावके माधुर्यकी पराकाष्ठा श्रीवृषभानु-नन्दिनीको (उपास्यके रूपमें) कौन जानता था? एक चैतन्यचन्द्रने ही परम उदार लीला प्रकट कर सब आविष्कार किया है।

सुधानिधिके लेखक और कहते हैं—

"यथा तथा गौरपदारविन्दे विन्देत भक्तिं कृतपुण्यराशिः।
तथा तथोत्सर्पति हृद्यकस्मात् राधापदाम्भोजसुधाम्बुराशिः॥"

सुकृतिसम्पन्न पुरुष श्रीगौरसुन्दरके पदकमलमें जैसे-जैसे भक्ति लाभ करते जाते हैं, वैसे-वैसे अकस्मात् उनके हृदयमें राधापादपद्मका प्रेम-सुधा सागर भी उमड़ पड़ता है।

अतएव गौर-पद-कमलके भृङ्ग विप्रलम्भ रसको पुष्ट करनेवाले श्रीगुरु और गौर भक्तोंके सङ्गसे विप्रलम्भ - विग्रह श्रीगौरसुन्दरके सेवाफलसे ही श्रीराधा-दास्य मिल सकती है। आत्मवृत्ति में राधा-दास्यकी इच्छाके साथ सदा गौर-विहित कृष्णका कीर्तन करना ही गौराङ्ग महाप्रभुकी आराधना है।

श्रीमद्भागवतमें माधुर्यभाव

[गतांकसे आगे]

प्रिय पाठकगण ! आप लोग पुनः अपने कथा प्रसङ्ग पर आइये । गोपियाँ श्वास-प्रश्वास छोड़ती दौड़ती हुई उलटे-सुलटे वस्त्राभूषणोंको धारण किये निराली अवस्थासे श्रीकृष्णके पास आ पहुँची हैं । वहाँ पहुँच कर कौन किस प्रकार खड़ी हैं, किस स्थितिमें हैं, इसका वर्णन बहुत विस्तृत हो जायगा, अतः उसका वर्णन न करते हुए श्रीकृष्ण और गोपियोंके संवादका ही हमें श्रवण करना है ।

नट-खट परम प्रभु श्रीकृष्णने गोपियोंको अपने पास आया देखकर वाक्चातुरीसे मोहित कर कहा--

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणं ॥
रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ।
प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥
भा० १०।२९।१८,१९

हे महाभाग्यवती गोपियों ! 'तुम्हारा स्वागत है । भले आईं । मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ ? व्रज में सब कुशल तो हैं ? इस समय तुम्हारे आनेका कारण क्या है, हमसे कहो । देखो, यह रात्रि बड़ी ही घोर है । इस समय भयंकर जीव वनमें विचर रहे हैं । इसलिये सुन्दरियों ! मेरी सम्मति है कि तुम व्रजको लौट जाओ । यहाँ तुम्हारा ठहरना ठीक नहीं है ।

मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ।
विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृढ्वं बन्धुसाध्वसम् ॥
दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ।
यमुनानिललीलैजत्तरु - पल्लवशोभितम् ॥
तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ।
क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥
भा० १०।२९।२० से २२

हे ललनाओं ! तुम्हारे माता-पिता, पुत्र, भाई और पति तुमको गृहमें न देखकर इधर-उधर खोज रहे होंगे । बन्धुओंको व्यर्थ घबड़ाहटमें न डालो । यदि तुम वनकी शोभा देखने आई हो, तो तुमने चन्द्रमाकी किरणोंसे उज्ज्वल एवं फूलोंसे परिपूर्ण वृन्दावन देख लिया और यमुनाजलके संयोगसे शीतल पवनकी मन्दगतिसे हिल रहे वृक्षोंके नवपल्लवोंकी शोभा भी भलीभाँति निहार ली । बस, हे सतियों ! देरी न करो, शीघ्र ही व्रज जाकर अपने पतियोंकी सेवा करो । तुम्हारे बालक और बछड़े चिल्लाकर रो रहे होंगे, उनको जाकर दूध पिलाओ और गायों को दुहो ।

अथवा मदभिस्नेहाद् भवत्यो यन्त्रिताशयाः ।
आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥
भा० १०।२९।२३

अथवा मुझमें मन लगा रहनेके कारण मुझको देखने आई हो, तो यह उचित ही है । इसमें कोई

दोष नहीं है; क्योंकि मुझसे सभी प्राणियोंको प्रसन्नता होती है। परन्तु कुलशील सौभाग्यवतियोंके लिये पति-प्रेम ही सब कुछ है। उनकी सेवा ही उनका परम धन है, उनकी आज्ञाका पालन करना ही उनका व्रत है।

भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया।
तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम्॥
दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥
अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम्।
जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्यं कुलस्त्रियाः॥
भा० १०।२९।२४ से २६

गोपियों! निष्कपट होकर, अपने स्वामी और स्वामीके बन्धुओंकी सेवा करना और सन्तानोंका पालन करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है। जिन स्त्रियों को उत्तमलोक प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वे पातकी को छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें, भले ही वह बुरे स्वाभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो। जार-सेवा कुल-कामिनी स्त्रियोंके लिये निन्दाका कारण है। यह निन्दित कर्म करनेसे स्त्रियाँ स्वर्ग लोक नहीं पातीं, उनकी निन्दा और अकीर्ति होती है। इसमें बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं और सदैव भय बना रहता है। कहाँ तक कहा जाय, यह बड़ा ही तुच्छ कार्य है। इसलिये मेरी बात मानकर यहाँसे व्रजको लौट जाओ।

श्रवणाद् दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात्।
न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान्॥
भा० १०।२९।२७

मेरे चरित्रोंका कथन और श्रवण करनेसे, मेरे दर्शन और ध्यानसे जैसी मुझमें प्रीति होती है, वैसी पास रहनेसे नहीं हो सकती। इसलिये तुम अपने-अपने घरोंको प्रस्थान करो।

परम प्रियतमके ऐसे चातुरी भरे अप्रिय वचनों को सुनकर गोपियोंको बड़ा ही विषाद हुआ। सब उमंगें और अभिलाषाएँ जाती रहीं। अपार चिन्ता ने उनके चित्तको चञ्चल कर दिया। शोकके कारण बारबार लम्बी और गरम सांस लेने लगीं। उनके अधरबिम्ब सूख गये। दुःखके भारी भारसे दबकर गोपियोंने अपना मुख नीचा कर लिया और पैरों के अंगूठोंसे पृथ्वी कुरेदती हुई चुपचाप जैसी की तैसी खड़ी रह गईं। कज्जलसे सनी काली आसुओं की बूँदे उनके कुचों पर गिरने लगी, जिनसे कुचों पर लगा हुआ कुंकुमकलित अङ्गराग धुल-धुल कर बहने लगा।

वे प्यारे श्रीकृष्णके समीप सब काम छोड़कर दौड़ी आई थीं, किन्तु उनको प्रियतमके मुखसे इस प्रकारके अप्रिय वचन सुननेको मिले, इससे उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ। उनके अधिक रोनेके कारण नेत्र-कमल फूल गये। फिर भी आँसुओंको अपने हस्त-कमलोंसे पोंछती हुई किंचित् प्रणयकोपके आवेश में गद्गद वाणीसे श्याममें अनुरक्त व्रजाङ्गनाएँ इस प्रकार कहने लगीं—

मैवंविभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं,
सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मात्यजास्मान्,
देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्।

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग,
स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे,
प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ।
भा० १०।२९।३१, ३२

हे विभो ! आपको ऐसे निष्ठुर वचन नहीं कहना चाहिये । हम सबकुछ छोड़कर, सेवा करने की अभिलाषासे आपके चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं । हे स्वतन्त्र ! तुम हमको न त्यागो । जैसे आदि पुरुष नारायण देव मुमुक्षु लोगोंको भजते हैं, वैसे तुम भी हम भक्तोंको भजो ।

हे प्रियतम आप धर्मज्ञ हैं । आपने जो कहा कि पति, पुत्र और बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका परम धर्म है, वह हम मानती हैं । इसी उपदेशके अनुसार उपदेश देनेवाले जो ईश्वर-स्वरूप आप हैं उनकी सेवा से ही पति, पुत्रादिकी सेवा सिद्ध हो जायगी, क्योंकि आप ही शरीरधारियोंके परम प्रिय बन्धु और आत्मा हैं । अर्थात् बिना आपके पति, पुत्रादि किसी कामके नहीं होते ।

हे प्यारे ! शास्त्रज्ञ चतुर लोग आप ही पर प्रेम करते हैं, क्योंकि आप ही नित्य प्रिय आत्मा हैं । नाथ ! पति, सुत आदि क्या सुख दे सकते हैं, वे तो दुःख देने वाले हैं । अतएव हे परमेश्वर ! हम पर प्रसन्न होइये । हे कमलनयन ! अनेक दिनोंसे जो हमारी आशा लगी हुई है, उसको नष्ट न करिए ।

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्,
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ।
सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण,
हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ।
भा० १०।२९।३४, ३५

हे सुखदायक नायक ! जो हमारा चित्त इतने दिनोंसे घरमें लगा था उसको आपने हर लिया है । इसलिये अब घरमें चित्त नहीं लगता ! हाथ भी घरके काममें नहीं चलते और पैर भी आपके चरणों के पाससे एक पग नहीं हटते । प्रियवर ! हम व्रज को कैसे लौट कर जाँय और वहाँ जाकर क्या करें ?

हे कृष्ण ! मन्द मुसकानयुक्त चितवन और मनोहर गीतसे हमारे हृदयमें मदनानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं । उनके तापको अपने अधर सुधा की धारासे सींचकर शीतल करिये, नहीं तो हे मित्र ! हमारा शरीर विरहकी अग्निसे भस्म हो जायगा और हम ध्यानके द्वारा आपकी पदवीको पहुँचेगी ।

हे कमल लोचन ! आपके चरण-कमल कमला को आनन्द देने वाले हैं । हे वनवासियोंके प्रिय ! जबसे हमने आपके चरणोंका स्पर्श पाया है तबसे हमारा चित्त आप ही में रम रहा है ।

जिसके कृपा-कटाक्षके लिये अन्यान्य देवगण अभिलाषा रखते हैं और प्राप्तिके लिये अनेक यत्न करते हैं, वह लक्ष्मी आपके हृदयमें स्थान पाकर भी तुलसीके साथ आपके भक्तसेवित चरणरजको

पानेकी लालसा रखती है। नाथ! हम भी लक्ष्मी के समान उसी रजको पानेकी इच्छासे आपके चरणोंकी शरणमें आई हैं।

हे संकटहरण, पापनाशन! हम सब छोड़कर आपकी उपासना करनेकी आशासे चरणोंके निकट आई हैं। हम पर प्रसन्न होइये। हे पुरुषभूषण, आपकी सुन्दर मुसकान और मनोहर दृष्टिसे हमारे हृदयमें कामकी आग जल उठी है, एवं उसके ताप से हमारी आत्मा तप रही है। कृपा करके हमको अपनी दासी बनाइये।

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री-
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः।
का स्त्र्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन,
संमोहिताऽऽर्यचरितान्नचलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं,
यद् गोद्विजद्रुम मृगाः पुलकान्य बिभ्रन्॥
व्यक्तं भवेन् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो,
देवोयथाऽऽदि पुरुषः सुरलोकगोप्ता।
तन्नो निधेहि करपङ्कजपार्तबन्धो,
तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किङ्करीणाम्॥
भा० १०।२९।३९ से ४१

हे प्रियतम! कुण्डल कान्तिसे मनोहर कपोल अधरसुधा एवं अलकावलीसे सुशोभित आपका मुखकमल और सबको अभय देनेवाले दोनों बाहु-दण्ड-लक्ष्मी जिसमें रुचि पूर्वक रमण करती है वह वक्षस्थल निहारकर हम आपकी दासी हो चुकी हैं।

प्यारे कृष्ण! त्रिलोकीमें कौन ऐसी स्त्री है जो तुम्हारे सुधामय पदोंसे युक्त बांसुरीके गानको सुन कर एवं त्रिलोकसुन्दर इस रूपको देखकर मोहित न हो और उसका मन अपने धर्मसे विचलित न हो जाय। तुम्हारे इस त्रिलोकमोहन रूपको देखकर और बांसुरीकी धुनि सुनकर पक्षी, पशु, मृग, गौ और वृक्षोंके भी आनन्दसे रोम-रोम खड़े हो जाते हैं।

हे देव! जैसे आदिपुरुष नारायण, देवगणकी रक्षा करते हैं वैसे ही आप व्रजवासियोंकी पीड़ा हरनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं। यह निश्चित बात है। हे दीनबन्धो! इसलिये आप हम दासियोंके तपे हुए स्तनों और शिरों पर अपना करकमल धरिये।

गोपियोंकी इस प्रकार कातर उक्ति सुनकर योगेश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्ण दयापूर्वक हँसे और उनकी इच्छाके अनुसार विहार करने लगे।

वैजयन्ती माला पहने हुए श्रीकृष्णचन्द्र उन असंख्य वनिताओंके झुण्डमें कभी आप गाते, कभी उनका गाना सुनते हुए इधर-उधर घूमकर वनको सुशोभित करने लगे।

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना॥
बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरु-
नीवीस्तनालभननर्मनखाग्रपातैः।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा-
मुत्तम्भयन् रति-पतिं रमयाञ्चकार॥
भा० १०।२९।४५,४६

उस समय यमुनाके तटपर पूर्ण चन्द्रमाकी चांदनी फैली हुई थी, चांदनीके प्रकाशसे शीतल और स्वच्छ बालू चमक रही थी। कुमुदके फूलोंकी सुवाससे परिपूर्ण शीतल मन्द वायु डोल रही थी। उसी मनोहर यमुना तटमें जाकर बाहु फैलाना, लिपटना, गले लगाना, कर, अलक, जंघा, नीवी और स्तनोंको छूना, परिहास करते हुए नखक्षत करना, क्रीड़ा, कटाक्ष, मन्द मुसकान आदिसे कामोद्दीपन करते हुए व्रजकिशोर व्रजरमणियोंके साथ रमण करने लगे।

यह रमण बहुत समय तक होता रहा। अन्तमें श्रीकृष्णको ऐसा आभास हुआ कि गोपियोंके हृदय में मानका उदय हुआ है। वह ऐसा समझ रही हैं कि सुन्दरता, रूप, गुण और भाग्यमें हमसे बढ़कर कोई भी स्त्री इस संसारमें नहीं है—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥
भा० १०।२९।४८

गोपियोंके सौभाग्य मद और अभिमानको देख कर उसे मिटाने और उन पर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र उनके बीचसे अन्तर्हित हो गये।

(क्रमशः)

—बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री, साहित्यरत्न

विनय

आइये व्रजपति व्रज नन्दन, नन्दक सुअन जसोदा नन्दन।
मोर मुकुट धर गोप बिनायक, जलद श्याम सुन्दर सब लायक॥
मुरली प्रिय अति आनद दाता, शोभा वारिधि प्रेम विधाता।
खेलहु कमल नयन व्रज माँहीं, जमुना तीर कदम्बनि छाँहीं॥१॥

कृपा समुद्र कृपा कर आवहु, गोधन ग्वाल मण्डली लावहु।
मंजुल मुरली नाद सुनावहु, गली-गली घन रस बरसावहु॥
मोद विनोद विधायक देवा, व्रजवासिन सों लेवहु सेवा।
मनमोहन पीताम्बर धारी, गोकुलके पति कुञ्जबिहारी॥
राधारमण जसोदा नन्दन, गोपीनाथ कमल जगबन्दन॥२॥

श्रीकमलाकर "कमल"

सन्दर्भ-सार

[श्रीकृष्णसन्दर्भ-११]

श्रीप्रद्युम्न तृतीय व्यूह हैं । शिवजीके द्वारा दग्ध कामदेव प्रद्युम्नरूपसे आविर्भूत हुए थे—ऐसा सुना जाता है । यह प्रद्युम्नका एकदेश अर्थात् आंशिक वर्णन मात्र है । क्योंकि वे नित्य ही श्रीकृष्णके चतुर्व्यूहके अन्तर्गत हैं । श्रीगोपालतापनीमें कहा गया है ।

यत्रासौ संस्थितः कृष्णस्त्रिभिः शक्त्या समाहितः ।
रामानिरुद्ध - प्रद्युम्नैरुक्मिण्या सहितो विभुः ॥

अर्थात् बलराम, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न एवं शक्ति रुक्मिणीके साथ सम्यक् लीला करते हुए जहाँ विभु श्रीकृष्ण अवस्थान करते हैं ।' इसलिये शिवनेत्रदग्ध कामदेवके लिये प्रद्युम्न होना असम्भव है । कामदेव साधारण देवता और इन्द्रके भृत्य जीव विशेष हैं । ब्राह्मणकुल—प्रसूत अवेदज्ञ व्यक्तिका ब्राह्मणत्व लोकाचार है, वास्तवमें वेदज्ञ व्यक्ति ही प्रकृत ब्राह्मण है । इस स्थलमें जिस प्रकार वेदज्ञ व्यक्तिका ही मुख्य ब्राह्मणत्व है, उसी प्रकार—

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना ।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥

यहाँ वासुदेवांश ही मुख्य कामदेव है । 'तु' शब्द भिन्नोपक्रममें प्रयुक्त है अर्थात् प्राकृत कामदेवसे वासुदेवांश कामदेव पृथक् हैं । उसमें वासुदेवांश ही कामदेव हैं— यह अर्थ करनेसे उनका मुख्य कामत्व प्रतीत होता है । इसलिये इसका यही समाधान है कि शिवके कोपानलसे दग्ध कामदेव अनङ्गत्वको प्राप्त हुए । देह-प्राप्तिके लिये वे वासुदेवांश—मुख्य-कामदेवमें प्रवेश किये थे । श्लोकोक्त भूयः शब्द द्वारा पहले भी प्रद्युम्नसे कामदेवकी उत्पत्ति हुई थी—ऐसा जान पड़ता है । अथवा वासुदेवांश अदग्ध काम जो पहले रुद्रकोपसे दग्ध नहीं हुए थे, वे पुनः देहोत्पत्तिके लिये वासुदेवमें प्रवेश किये थे । दग्ध न होनेका यही कारण है कि हर-कोपानलसे प्राकृत काम ही दग्ध हुए थे, ईश्वर काम दग्ध नहीं हो सकते थे । वासुदेवांश कामका विषय नहीं है-

स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्य-समुद्भवः ।
प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः॥
(भा. १०।५५।२)

जो कृष्णवीर्यसे उत्पन्न हुए, वे प्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध हैं एवं सब प्रकारसे पिताके समान ही हैं । जो कृष्णवीर्यसे उत्पन्न हुए, कृष्णांशसे आविर्भूत हुए, वे ही प्रद्युम्न हैं-प्रकटलीलाके समय रुक्मिणीके गर्भसे जन्म ग्रहण किये थे । वे प्रतिकल्पमें श्रीकृष्णलीला-प्रकटसमयमें रुक्मिणीके पुत्र रूपसे आविर्भूत होते हैं । अप्रकलीलामें भी रुक्मिणीके पुत्र रूपसे द्वारकामें लीला करते हैं । "कामस्तु वासुदेवांशः" इस श्लोकसे यह स्पष्ट है कि प्राकृत कामका प्रद्युम्नरूपसे प्रकट होना असम्भव है ।

दग्ध कामका प्रद्युम्नमें प्रवेश करनेके कारण तदीय जन्मलीलाका भागवतमें उल्लेख है। अतएव नारदजीने रतिको पतिरूपमें प्रद्युम्नका वरण करनेका उपदेश दिया था। प्रद्युम्नमें रतिपति (कामदेव) का प्रवेश होनेके कारण प्रद्युम्नको पतिरूपसे वरण करनेसे रतिसे कोई दोषजनक कार्य नहीं हुआ। नारदजीने प्रद्युम्नमें दग्धकामदेवका प्रवेश जाननेके कारण ही रतिको ऐसा उपदेश दिया था। नहीं तो परम-भागवत देवर्षि नारद रतिको अन्य पतिसंसर्गमें प्रवर्त्तित नहीं कराते।

संकर्षण-प्रद्युम्नकी तरह अनिरुद्धका चतुर्व्यूहत्व भागवतके तृतीय स्कन्द, प्रथम अध्याय, ३३ वें श्लोकमें कहा गया है। उन्हींके निश्वाससे वेदसमूह की अभिव्यक्ति होनेके कारण वे शब्दयोनि हैं। चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन अर्थात् अन्तःकरण इन चारों स्थानोंके अधिष्ठाता क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं।

अनिरुद्ध यदि भगवान थे, तो बाणासुरके बन्दी क्यों हुए थे ? इसका उत्तर यह है कि वे वास्तविक बन्दी नहीं हुए, वह उनकी बन्धानुकरणलीलामात्र है। जिस प्रकार श्रीरामचन्द्र महीरावण द्वारा पातालमें ले जाये गये थे और वहाँ बन्दी हुए थे--यह जिस तरह वास्तविक नहीं है, नरलीलाका अनुकरणमात्र है, श्रीअनिरुद्धके सम्बन्धमें भी वैसा ही जानना चाहिये।

पद्मपुराणमें श्रीअनिरुद्धकी महिमाका इस प्रकार वर्णन है—

अनिरुद्धो बृहद्ब्रह्म प्राद्युम्निर्विश्वमोहनः।
चतुरात्मा चतुर्वर्णश्चतुर्युगविधायकम्।
चतुर्भेदैकविश्वात्मा सर्वोत्कृष्टांशकोटिभूः॥

अर्थात् अनिरुद्ध बृहद्ब्रह्म, प्रद्युम्न-पुत्र, विश्वमोहन, चतुर्युगमें चारवर्णोंसे युगावतारूपसे चतुरात्मा होकर चतुर्युग विधायक हैं। वे ही निखिल विश्वके अन्तरात्मा हैं, वे सर्वोत्कृष्टांश प्रसवकारी (सृष्टिकारी) आश्रयात्मा हैं। प्रलयजलमें विहारकारी वटपत्रशायी भगवान इनके ही प्रकाशविशेष हैं।

श्रीकृष्णकी लीला दो प्रकारकी है—प्रकट और अप्रकट। लोकलोचनमें गोचरीभूत होने वाली लीला प्रकटलीला है और केवल परिकरोंके दर्शनयोग्या लीला अप्रकट लीला है। लीला-प्रकट-समयमें अंशावतार गण श्रीकृष्णमें प्रवेश करते हैं, और श्रीकृष्ण उन्हें अपने-अपने धामोंमें प्रेरण कर सपरिकर मथुरा, द्वारका और वृन्दावनधाममें अप्रकट लीला करते हैं।

जीवको मुक्तिधाम-गमनकी रीति छान्दोग्य उपनिषद्में इस प्रकार वर्णित है—हृदयमें एक-सौ-एक नाड़ियाँ संयुक्त हैं। उसमेंसे एक नाड़ी मस्तकसे निकलती है, जिसे सुषुम्ना करते हैं। इस नाड़ीके द्वारा उत्क्रमण होनेसे अर्थात् प्राणवायु निकलनेपर मोक्ष होता है और अन्यान्य नाड़ियोंसे निकलने पर संसार गति होती है। विद्वान (तत्त्वज्ञानी) व्यक्ति इस नाड़ीके द्वारा उत्क्रान्त होकर सूर्यकी किरणोंके द्वारा उर्द्धलोकमें गमन करते हैं। इसी उपनिषद्में वर्णित है—ब्रह्मोपासकगणकी मृत्यु होनेसे पुत्र-

शिष्यादि संस्कार न करने पर भी वे अर्चिरादि मार्गसे हरिके निकट गमन करते हैं। कौषीतकी ब्राह्मणमें वर्णित है---इस प्रकार मृत व्यक्ति देवयान -पथसे आकर पहले अग्निलोक, पश्चात् वायुलोक, वरुणलोक, इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक और अन्तमें ब्रह्मलोकमें पहुँचते हैं । बृहदारण्यकमें कहा गया है—हरिध्यानकारी व्यक्ति जब इस लोकसे प्रस्थान करते हैं, वे पहले वायुलोकमें जाते हैं, उसके बाद रथचक्रके छिन्द्र जैसे स्थानोंसे उर्द्धलोकमें गमन करते हैं। कहीं-पर सूर्यद्वारसे विरजाधाममें गमन करनेकी बात सुनी जाती है । यहाँ संशय होता है कि क्या ये सभी पथ भिन्न-भिन्न हैं ? इसके उत्तरमें वेदान्तके ४।३।१ सूत्रमें कहते हैं--'तद् य इत्थं विदुर्ये चेमेऽरण्ये श्रद्धां तप इत्युपासते अर्चिषमिति'। अर्थात् जो सब गृहस्थ इस पञ्चाग्निस्वरूपको उक्त प्रकारसे जानते हैं, एवं जो अरण्यवासी श्रद्धाके साथ तप करते हैं, वे दोनों ही मृत्युके पश्चात् अर्चिरभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं।

यहाँ जिस प्रकार क्रममुक्तिमार्गमें अर्चिरादि-मार्ग ब्रह्मलोक गमनका मुख्यपथ है, उसी प्रकार श्रीकृष्णावतार प्रसङ्गमें श्रीकृष्णका अवतरण मुख्य है और उपेन्द्रादि अवतारोंका श्रीकृष्णमें प्रवेशपूर्वक अवतरण गौण है। लीला अप्रकटकाल में उन्हें अपने - अपने धामोंमें प्रेरणपूर्वक अपनी नित्यलीलामें वृन्दावनादि धाममें अप्रकटरूपसे विहार करते हैं, यह पहले ही कहा गया है—इस प्रसङ्गमें उद्धवजीकी उक्ति है---

त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः।
अवतीर्णोऽसि भगवन् स्वेच्छोपात्तपृथग्वपुः ॥
(भा. ११।११.२८)

अर्थात् तुम ब्रह्म हो, परम व्योम हो, प्रकृतिसे अतीत भगवान हो। अपनी इच्छानुसार पृथक्-पृथक् सभी वपुओंको आत्मसात् कर अवतीर्ण हुए हो। साक्षात् भगवान अवतीर्ण हुए हैं, उन्हींका वैभव ब्रह्म है और परम व्योम वैकुण्ठ है। वे किस प्रकार अवतीर्ण हुए ? स्वेच्छासे, अपने-अपने धामसे पृथक् वपु अर्थात् निजाविर्भाव उपेन्द्रादिको आकर्षण कर अवतीर्ण हुए।

तृतीयस्कन्धके २।१५ श्लोकमें उद्धवजीद्वारा विदुरजीके प्रति कहे गये वाक्यमें देखा जाता है---

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपै-
रभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा।
परावरेशो महदंशयुक्तो
ह्यजोऽपिजातो भगवान् यथाग्निः ॥

जब अपने शान्त स्वभावयुक्त भक्तोंको अशान्त मूढ़ व्यक्तियों द्वारा पीड़ित देखते हैं, तब भक्तानुग्रहकारक परावरेश अज भगवान् महदंशयुक्त होकर काष्ठस्थित अग्निकी तरह जन्म ग्रहण करते हैं। यहाँ 'महत् अंश' का अर्थ 'महान् अपने अंश' युक्त होकर है। भा. १०।२।९ श्लोकमें यह स्पष्ट हुआ है-

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे।
प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि।

मैं सभी अंशोंका भाग=(भजन) प्रवेश जिसमें हो, ऐसे परिपूर्णरूपसे देवकीका पुत्रत्व प्राप्त करूँगा, तुम नन्दपत्नी यशोदाके गर्भमें आविर्भूत होना।

श्रीकृष्णमें सभी अवतारोंका प्रवेश होनेके कारण उनके अवतारकालमें वे ही युगावतार होते हैं। श्रीकृष्णको देखकर गर्गजीने कहा था-

आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनु: ।।
शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गत: ।।
(श्रीमद्भा.)

--और यह जो साँवला-साँवला पुत्र है, यह प्रति युगमें शरीर ग्रहण करता है । पिछले युगोंमें इसने क्रमश: श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे । अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है । इस समय (द्वापर युगमें) इसके अन्दर वैकुण्ठाधिपति नारायण एवं सभी युगावतारगण प्रविष्ट हैं । जो स्वरूपत: कृष्णवर्ण नहीं हैं, वे भी इसके अन्दर प्रविष्ट होकर इसके प्रभावसे कृष्णवर्णके हो रहे हैं । इसी प्रभावके कारण इसका नाम 'कृष्ण' है ।

त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति मूवेव श्रौती महाराज

प्रतीक्षा

व्योम धावित अट्टालिकाके
वातायनों से झांकती
पथ जोहती
इक ब्रजवधू,
घनश्यामका
कौंधती घन दामिनी ।
घड़घड़ाते इन्दर पटह
सुन ध्वनि तिनकी
डरावनी
ठिठकती कोमल वपु
वह ध्यान लोभित कामिनी ।।
कर याद प्रिय, बलरामके
अनुज, सुत नन्दभामिनी
होते समीप आजु जो
प्राण प्रिय मेरे अधिप
घनघोर स्वर सुन लिपटती
अनुराग भर हिय श्यामके ।।
उपलहृत तजि वाटिका
स्नेह की, कल जो गये
खिली अधखिली कलियां
आंसु गिराती रह गयीं
विरह में घनश्याम के ।
चित्त चोर चपल नयन जिनके
मन मोहते मधु वचन जिनके
ध्यान में हैं खो गयीं
सत्य सखि सब श्याम के ।।

—सत्यपाल गोयल एम. ए.

प्रचार-प्रसङ्ग

श्रीश्रीझूलनयात्रा महोत्सव

[क] श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में—

अन्यान्य वर्षोंकी तरह इस वर्ष भी गत ९ भाद्र, २६ अगस्त, शुक्रवार, एकादशीसे लेकर १३ भाद्र, ३० अगस्त, मंगलवार, पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधा-विनोद बिहारीजीका झूलन महोत्सव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। सभा-मण्डप, हिंडोला और श्रीमन्दिर नाना प्रकारकी आलोक मालाओं, रङ्ग-बिरंगे वस्त्रों, कदली-वृक्षों और आम्रपल्लवोंसे सुसज्जित किये गये। नित्य नई-नई झाँकियाँ, विराट हरिसंकीर्त्तन और प्रवचन आदि महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने अपने सारगर्भित प्रवचनों द्वारा श्रोताओंका चित्त आकर्षित कर हरिकथाका परिवेशन किया।

[ख] श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें—

समितिके मूल मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें यह महोत्सव विराट रूपमें सम्पन्न हुआ है। वहाँ मठके नवनिर्मित विशाल मन्दिरमें श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीके झूलोंकी सुन्दर-सुन्दर झाँकियाँ प्रस्तुत की गई थीं। ये सभी झाँकियाँ विद्युतके द्वारा चालित होकर बड़े ही मनोहर लगती थीं। प्रतिदिन शामको ६ बजेसे रातको १० बजेतक दर्शकोंका अपार भीड़ झूलनकी झाँकियोंका दर्शन करने आया करती थीं।

[ग] श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाम में—

समितिके अन्यान्य मठोंमें भी झूलन महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया गया है। श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें श्रीश्रील आचार्यदेवके निर्देशानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजकी देखरेखमें यह उत्सव मनाया गया। इस उत्सवमें स्थानीय एवं निकटवर्ती स्थानोंके बहुतसे गण्यमान्य सज्जनोंने भाग लेकर समितिके सदस्यवर्गको बहुत ही आनन्दित और उत्साहित किया है। पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्धमन्थी महाराजजीने प्रतिदिन धर्म सभाका सभापतित्व ग्रहण किया। उत्सवके अंतिम दिन सर्वसाधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया। इस महोत्सवमें सहस्राधिक व्यक्तियोंने आकण्ठ महाप्रसादका सेवन किया।

श्रीबलदेवाविर्भाव

गत १३ भाद्र, ३० अगस्त, मंगलवार, पूर्णिमाके दिन श्रीश्रीबलदेव प्रभुकी आविर्भाव तिथि समितिके सभी शाखा एवं मूल मठमें उपवास, कीर्त्तन, भाषण और प्रवचनके द्वारा पालित हुई है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें विशेष धर्म-सभाका

आयोजन किया गया था, जिसमें श्रीबलदेव तत्त्वकी विशद रूपमें आलोचना की गई।

श्रीश्रीजन्माष्टमी व्रत और श्रीश्रीनन्दोत्सव—

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत २२ भाद्र, ८ सितम्बर, वृहस्पतिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी व्रतोपवास और दूसरे दिन शुक्रवारको श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, श्रीधाम नवद्वीपमें--

यहाँ यह उत्सव श्रीश्री लघ्वाचार्यदेवके उपस्थिति में विराट समारोह तथा विशेष उत्साहके साथ सम्पन्न हुआ है। इस उपलक्ष्यमें यहाँ श्रीकृष्णकी जन्मलीला-प्रदर्शनीका बड़ा सुन्दर आयोजन किया गया था। यह प्रदर्शनी ८ सितम्बर श्रीश्रीराधाष्टमी तिथि तक खुली रही। प्रतिदिन हजारों दर्शक तथा श्रोतागण आया करते थे। प्रदर्शनीमें कृष्णकी विविध प्रकारकी मनोहर लीलाओंको सुन्दर ढङ्ग से प्रस्तुत किया गया। ये सभी लीलाएँ विद्युत शक्ति द्वारा परिचालित होती थीं। इस अवसर पर परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेव तथा विभिन्न त्रिदंडि चरणोंके भाषण एवं प्रवचन हुए। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन जयन्ती योग था। इस दिन सबेरेसे १२ बजे रात तक श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण हुआ। दूसरे दिन नन्दोत्सवके अवसर पर सहस्राधिक व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा में—

यहाँ भी पिछले वर्षोंकी तरह आम्रपल्लव, कदली वृक्ष और रङ्ग-बिरङ्गी आलोकमालाओंसे श्रीमन्दिर और नाट्य मन्दिरको आकर्षक रूपसे सजाया गया। सबेरे से १२ बजे रात तक उपवास रहकर श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धकापारायण और त्रिदंडिस्वामी श्रीमद् भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज, श्रीपाद कुञ्जविहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी आदिके उपदेशपूर्ण भाषण हुए। अन्तमें पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीकृष्ण तत्त्वके विभिन्न पहलुओं पर बड़ा ही रोचक और विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर निमंत्रित अनिमंत्रित लगभग ५०० व्यक्तियोंको विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रीश्रीराधाष्टमी-व्रत

गत ५ आश्विन, २२ सितम्बर, वृहस्पतिवारको समितिके सभी मठोंमें श्रीराधाष्टमीका महोत्सव कीर्त्तन, पाठ, भाषण और प्रवचनके माध्यमसे बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उक्त दिवस पूज्यपाद त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने श्रीराधातत्त्वके सम्बन्धमें बड़ा ही सुन्दर और पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया। दोपहरमें श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजीका विशेष रूपसे भोगराग सम्पन्न होने पर उपस्थित सभी व्यक्तियों को महाप्रसाद वितरण किया गया।

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव

गत १० आश्विन, २७ सितम्बर मंगलवारको समितिके सभी शाखामठोंमें श्रीॐविष्णुपाद श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका आविर्भाव महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। उक्त दिवस इस महापुरुषकी अप्राकृत शिक्षाओं तथा अलौकिक जीवनी पर बड़ा ही मार्मिक प्रकाश डाला गया। उनके रचित कीर्त्तनों तथा पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्तन किया गया। मठवासी सभी वैष्णवोंने इन महापुरुषके प्रति अपनी-अपनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित की।

दूमका जिलेमें प्रचार

पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज और त्रिदण्डिस्वामी त्रिदंडी महाराज श्रीमुकुन्दगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीमुरली मोहन ब्रह्मचारी, श्रीकानाईलाल ब्रह्मचारी, श्रीवृषभानुदास ब्रह्मचारी तथा श्रीराघवचैतन्य ब्रह्मचारीको लेकर श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीके प्रचारार्थ दूमका जिलेके विभिन्न स्थानोंमें शुभागमन किये वे आसनवनि, सारसाजोल, राजबन्ध, धाधिका आदि स्थानोंमें प्रचार कर दूमका शहरमें पहुँचे। यहाँके D E. O. (जिला शिक्षा अधिकारी) और Civil Surgeon (जिला चिकित्सालयाध्यक्ष) के गृहमें पूज्यपाद श्रीमद् वामन महाराजजीने भागवत-व्याख्या करते हुए वर्त्तमान समाजकी शोचनीय अवस्था, धर्म व्यतीत शान्तिकी असंभावना, कृष्णसेवा ही सब सुखोंका आधार है—इन विषयों पर प्रकाश डाला। स्थानीय वकील, कॉलेजोंके प्रोफेसर, विद्यालयोंके शिक्षक, विभिन्न कार्यालयोंके कार्यकर्त्ता, शहरके विशिष्ट धनी व्यक्ति, धर्मप्राण सज्जनगण आदि स्वामीजीका पाठ सुनने आया करते थे। श्रीप्रह्लाद लीला, श्रीगौरलीला, श्रीकृष्णलीला आदिका छायाचित्र द्वारा प्रदर्शन करते हुए पूज्यपाद त्रिदण्डि महाराज शास्त्रोंका विचार प्रकाश करते थे। यहाँ से वे जारमुण्डि पहुँचे। पूज्यपाद श्रीमद् वामन महाराज बड़रणवहाल और दोउदाँड़ गाँवों में प्रचार कर पुनः दूमका पहुँचे हैं। वहाँ वे विपुल भावसे श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणी प्रचार कर रहे हैं।

सिउड़ीमें प्रचार

जारमुण्डिमें प्रचार कर पूज्यपाद त्रिदंडि महाराज वीरभूम जिलाके सदर सिउड़ीमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीपाद उरुक्रम दासाधिकारीके गृहमें अवस्थान किया। यहाँ के राधावल्लभ तला तथा शिव मन्दिरमें उन्होंने छायाचित्र द्वारा कृष्णलीलादि का प्रदर्शन करते हुए श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। वहाँ से वे करिघ्या नामक स्थानमें एक महत् जनसभामें भागवत-कथा कीर्त्तन कर नवद्वीप लौटे हैं।

आसाम प्रदेशमें प्रचार

श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजने आसाम प्रदेशके ग्वालपाड़ा जिलेमें विपुलरूपसे श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया है। वहाँ उन्होंने गौरीपुरमें सर्वप्रथम गमन किया। स्वामीजीकी

वाणी सुनकर बहुत शिक्षित व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभु की शिक्षाकी ओर आकृष्ट हुए। यहाँ कुछ वर्ष पूर्व श्रीश्रील गुरुपादपद्मने आगमनपूर्वक संस्कृत भाषा की आवश्यकता पर वक्तृता प्रदान की थी। इससे पूर्व पूज्यपाद पर्यटक महाराज शिलिगुड़ी, जलपाई-गुड़ी, दार्जिलिङ्ग, बसुगाँव आदि स्थानोंमें प्रचार कर चुके थे। यहाँ से वे गोलोकगंज स्थित समिति के मठमें पहुँचे। यहाँ से वे झूलनयात्रा महोत्सव समाप्त कर बंगाइगाँव पहुँचे। वहाँ के स्थानीय रेलवे कालोनीमें हरिकथाका प्रचार किया। वहाँ से वे श्रीनवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें ससंघ प्रत्यावर्त्तन किये हैं।

दीक्षाकी शुभ बेला पर

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव ॐ विष्णुपाद परिव्राजकाचार्य अष्टोत्तर-शत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुपादके चरणारविन्दोंमें दीनकी कृपा प्रार्थना।

ॐ अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मोलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

पतितपावन श्रील गुरुदेव!

सर्वप्रथम आपके उन चरणारविन्दोंमें, मुझ अधमका असंख्य साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कृपापूर्वक स्वीकार हो, जिन्होंने मुझ पातकीको निज चरणारविन्दोंमें आश्रय प्रदान करते हुए कृष्णनाम देकर इस संसारसे उद्धार पानेके पथ पर लाकर खड़ा किया है। हे गुरुदेव! आपके इस अपार स्नेह और अतुलनीय दयाका वर्णन मैं कोटि-कोटि मुखसे भी करने में असमर्थ हूँ।

आज सचमुच मेरा अहोभाग्य है। आपने मुझ पतित पर कृपा कर गत ५ पद्मनाभ, मंगलवार दिनांक ४-१०-६९ को दीक्षा प्रदान कर अपने सुशीतल चरणारविन्दोंमें स्थान दिया। ऐसे आपके चरणारविन्दोंकी वन्दना करनेमें मैं बुद्धिसे सर्वथा असमर्थ हूँ। आज आपने मेरे स्वप्नको साकाररूप प्रदान किया है। सद्गुरुका आश्रय बड़े भाग्यसे मिलता है। आज यह पतित आपकी चरण धूलिको पाकर अपनेको अहोभाग्यशाली अनुभव कर रहा है। अनेक वर्षोंसे यह मेरी इच्छा थी, जिसे आपने भगवान श्रीकृष्णकी लीलास्थली मथुराधाममें अनायास ही पूर्ण कर दी।

मेरी दीक्षाकी अनुपम शुभबेला कितनी सुहावनी थी कि मङ्गल प्रभातसे ही दीक्षाकी तैयारियाँ आरम्भ होने लगी थी। श्रीलगोपालभट्ट गो० की वैष्णवस्मृति "श्रीसंस्कारदीपिका" के विधानानुसार क्षौरकार्य सम्पन्न करके यमुना स्नानान्तर

परमाराध्यतम श्रीश्रीलगुरुदेवके चरणोंमें सपत्नी दीक्षा ग्रहण की। तदुपरान्त मध्यान्ह समय गुरुपरम्पराकी जयध्वनि और उच्च हरिसंकीर्तनके मध्य उपनयन संस्कारके कृत्य--यज्ञ, होमादि अनुष्ठानके लिये मण्डपमें बैठा। उस समय भगवानके संमुख श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके विराट नाट्य मन्दिरमें मृदंग, करताल, कांसर, घण्टा आदिके द्वारा अनेकों कण्ठोंसे निःसृत संकीर्तनका रव दिग्मण्डलको मुखरित कर रहा था। तत्पश्चात् उक्त सारस्वत-स्मृतिके अनुसार उपनयन संस्कारका कार्य सुसंपन्न हुआ। उस समय अन्यान्य त्रिदंडिपाद श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदांत पर्यटक महाराज आदि और शुद्ध वैष्णवगणके समक्ष गुरु महाराजके निकट उपनयन ग्रहण कर "श्रीअच्युत गोविन्द" नाम प्राप्त हुआ। तदुपरान्त विधि अनुसार भिक्षा आदिका कार्य सम्पन्न हुआ।

वैसे तो संसारमें गुरुका अभाव नहीं है। नाममात्रके गुरु सर्वत्र पाये जा सकते हैं, किन्तु सद्-गुरुका प्राप्त होना दुर्लभ है। इसी बातको शिवजी पार्वतीसे कहते हैं—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य-वित्तापहारकाः।
सद्गुरु दुर्लभः देवि शिष्यसन्तापहारकः॥

हे देवि! शिष्यसे अर्थ संग्रहकारी गुरु जगतमें बहुत हैं, किन्तु शिष्यके यावतीय दुःख दूर कर सकें, इस प्रकारके गुरु दुर्लभ और दुष्प्राप्य हैं। महाभाग्य न होने से सद्गुरु-चरणाश्रय प्राप्त नहीं होता।

अतः आज मैं दिव्यज्ञान प्रदाता सद्गुरुका आश्रय पाकर धन्य हूँ।

शास्त्रोंमें सद्गुरुके निकट दीक्षामंत्रादि ग्रहण करनेकी विधि बताई गई है। चूँकि अदीक्षित व्यक्ति यदि बहुत यत्नसे भक्तिके साथ पूजा भी करे, तब भी भगवान उसे ग्रहण नहीं करते।

अदीक्षितस्य वामोरू यान्ति सर्वम् निरर्थकम्।
पशुयोनिमवाप्नोति दीक्षा विरहितो जनः॥
(विष्णुयामल)

स्कन्धपुराणमें भी ब्रह्माजी नारदको कहते हैं-

ते नराः पशवो लोके किं तेषां जीवने फलम्।
यैर्न लब्धा हरेर्दीक्षा नार्चिता वा जनार्दनः॥

यही बात नित्य सिद्ध महाराज श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने अपने पदमें गाई है:--

आश्रय लइया भजे, तारे कृष्ण नाहि त्यजे,
आर सब मरे अकारण। (प्रार्थना ४४)

इस प्रकार समस्त धर्मशास्त्रोंमें जीवकी दीक्षाका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

हे कृष्णतत्त्ववित् श्रीलगुरुदेव! आज मैं आपके अभयपादपद्मोंको प्राप्त कर गौरवका अनुभव कर रहा हूँ।

किन्तु मैं सेवाशून्य अभाजन हूँ। आप तो प्रेम के महाजन हैं। कृष्ण प्रेम वितरित करनेके लिये ही आपका इस संसारमें गोलोकसे आगमन हुआ है। आप सदैव जीवके हितमें रत रहते हैं। आपने मायासे मोहित अगणित जीवोंका उद्धार किया है।

मुझ कंगालके पास तो आपकी पूजाके लिये कुछ भी नहीं है । मैं तो संसारके तापसे व्याकुल होकर आपके सुशीतल चरणारविन्दोंमें आया हूँ । आप मेरे चित्तका शोधन करें । आप ही एकमात्र मुझ अगतिके लिये गति हैं । मैं मन्दमति भक्ति-स्तुति भी नहीं जानता । मेरी क्या गति होगी ? आप मुझ दीन पर कृपा करें, चूँकि आपकी कृपाके बिना कुछ भी संभव नहीं है । स्वयं भगवान् श्रीगौराङ्ग देव कहते हैं:—

महत् कृपा बिना कोन कर्मे भक्ति नय ।
कृष्णभक्ति दूरे रहु संसार नहे क्षय ॥
(चं. च. म. २२।५५)

अतः हे दिव्यज्ञान प्रदाता श्रील गुरुदेव ! मैं तो आपके पादपद्मोंको छोड़कर मायाके बन्धनमें पड़ा हुआ हूँ । आज आपके अभय पादपद्मोंमें यह दीन-हीन यही कृपा प्रार्थना करता है कि—आप मुझ भजन साधनहीन अबोध बालक पर कृपा कर वांछाकल्पतरूके समान कृष्ण - प्रेम - भक्ति प्रदान करें और आपके चरणोंका मैं अपने हृदय-मन्दिर में अनुक्षण ध्यान करता रहूँ ।

श्रीचरण सेवाभिलाषी दीनहीन
—अच्युत गोविन्द दासाधिकारी,
जयपुर (राजस्थान)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके छात्रोंकी अपूर्व सफलता

अत्यन्त हर्षकी बात है कि इस वर्ष श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिद्वारा परिचालित चतुष्पाठीके छात्रों ने 'बङ्गीय संस्कृत शिक्षा परिषद्' द्वारा परिचालित विभिन्न परीक्षाओंमें अपूर्व सफलता प्राप्त की है । त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त उद्धमन्थी महाराजने वैष्णव दर्शन (उपाधि) में द्वितीय विभाग तथा श्रीहरिनामामृत व्याकरण (मध्य) में प्रथम विभाग, पण्डित श्रीपाद राघव चैतन्य ब्रह्मचारी व्याकरण-तीर्थने काव्य (मध्य) में द्वितीय विभाग और श्रीपाद वृषभानु ब्रह्मचारीने श्रीहरि-नामामृत व्याकरण (आद्य भाग) में द्वितीय विभाग प्राप्त करके समितिका नाम उज्ज्वल किया है ।

जो छात्र समितिकी चतुष्पाठीसे श्रीहरिनामा-मृत व्याकरण और वैष्णव दर्शन अध्ययन करना चाहते हों, उनके लिये समिति की ओरसे भोजन एवं वासस्थानकी निःशुल्क व्यवस्था है । —निजस्व सम्वाददाता

केदार-बद्रीनाथकी परिक्रमा

गत १७ ज्येष्ठ, ३१ मई, मंगलवारको हाउड़ा स्टेशनसे यात्रा कर पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्-भक्तिवेदान्त हरिजन महाराजकी परिचालनामें यात्रियोंका एक दल श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके नियमानुसार श्रीकेदार-बद्रीनाथ आदि उत्तर भारत के विभिन्न तीर्थोंका कीर्त्तनमुखसे दर्शन कर २६ जून रविवारको पुनः हावड़ाको लौटा है।

पहले वे हरिद्वार पहुँचे। वहाँ दो दिनों तक ठहर कर हृषीकेश पहुँचे। वहाँ भी दो दिन ठहरे। हृषीकेशके निकट ही लक्ष्मणझूला है। यह गंगाजी के ऊपर निर्मित एक हिलता सेतु है। यहाँसे बस द्वारा श्रीबदरिकाश्रम जाते हुए रास्तेमें देवप्रयागका दर्शन कर पिप्पलकोटिमें एक रात और जोशीमठमें दो रात विश्राम किया। श्रीमद् शंकराचार्यजीने चारधामोंमेंसे हिमालयमें जोशीमठ की स्थापना की थी। बद्रीनारायण बस स्टेन्टसे आध माइल दूर मन्दाकिनी तट पर श्रीश्रीचतुर्भुजनारायण विराजमान हैं। यहाँसे डेढ़ कोस दूर सरस्वतीके तट पर श्रीव्यासाश्रम है। पास ही गणेश-गुहा, वसुधारा (हजार फुट ऊपरसे गंगाजीकी धारा), भीमपुल आदि दर्शनीय स्थान हैं। बदरिकाश्रममें तीन दिन वास कर रुद्र प्रयाग होकर गुप्तकाशी (समुद्र तलसे १५०० फुट ऊँचा) पहुँचे। इस स्थान पर शिवजीने गुप्त रूपसे पञ्च पाण्डवोंको दर्शन दिया था। यहाँसे यात्रियोंमें श्रीरामपुर पहुँचकर वहाँ एकरात विश्राम किया। पुनः यहाँसे पांच कोस पर स्थित त्रियुगी नारायण पहुँचे। यहाँ पर सत्ययुगसे प्रज्ज्वलित एक यज्ञकुण्ड है। त्रियुगी नारायणके दक्षिणमें सरस्वतीजी और बाँएमें श्रीलक्ष्मीजी हैं। यहाँसे २½ माइल नीचे शोणप्रयाग है जो मन्दाकिनी और वासुकीका सङ्गमक्षेत्र है। यहाँ से यात्रीगण गौरीकुण्ड होकर श्रीकेदारनाथ (समुद्र तलसे ११७५० फुट ऊँचा) पहुँचे। गौरीकुण्डमें तप्तकुण्ड नामक उष्ण धारा है। श्रीकेदारनाथमें दो दिन यापन कर गुप्तकाशी होकर बस द्वारा हृषीकेश पहुँचे। यहाँसे पुनः रेलगाड़ी द्वारा हाउड़ा प्रत्यावर्त्तन किया गया है।

रथयात्रामें श्रीपुरीधामका दर्शन

धर्मप्राण सज्जनोंके अनुरोधसे इस वर्ष रथयात्रा के अवसर पर श्रीपुरीधाम-दर्शनका आयोजन किया गया। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके कुछ उत्साही सेवकोंके नेतृत्वमें यात्रियोंका एक दल गत ३० ज्येष्ठ, १३ जून सोमवारको हाउड़ा स्टेशनसे रवाना होकर श्रीरेमुना (श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथ), भाजपुर (वैतरणी तीर पर सत्ययुगसे सेवित श्रीश्रीश्वेत-वराहदेव, ब्रह्माके स्थापित गरुड़-स्तम्भ, वराहदेव, विरजा मन्दिर) भुवनेश्वर (भुवनेश्वर शिव, अनन्त वासुदेव, बिन्दु सरोवर), साक्षीगोपाल आदि दर्शन कर गुण्डिचा मार्जनके दिन श्रीजगन्नाथ-क्षेत्र में उपस्थित हुआ। यात्रियोंने गुण्डिया-मार्जन दर्शन कर रथ यात्रा दिवसमें श्रीश्रीजगन्नाथ - बलदेव-सुभद्राजीके तीनों रथोंको खींचा। यहाँसे आलाल-नाथ (गोपीनाथ) एवं इतिहास प्रसिद्ध कोनारकके सूर्यमन्दिरका दर्शन किया। वहाँसे वे पुनः गत २ जुलाई, शनिवारको हाउड़ा लौट आये।

श्रीचैतन्यशिक्षामृत

[गतांकसे आगे]

(३) अस्थिर वैराग्य--कलह, क्लेश, अर्थका अभाव, पीड़ा, विवाहका न होना और स्त्री-वियोग आदि कारणोंसे क्षणिक वैराग्य उदित होता है। ऐसे क्षणिक वैराग्यके आवेशमें जो लोग भेक (वैराग्य वेष) ग्रहण कर लेते हैं, वे 'अस्थिर वैरागी' कहलाते हैं । उनमें यथार्थ वैराग्यका अभाव होता है। अतएव वे शीघ्र ही कपट वैरागी हो पड़ते हैं।

(४) औपाधिक वैरागी--जो लोग मादक द्रव्यों के वशीभूत होकर संसारके लिये अयोग्य हो पड़ते हैं, वे लोग मादक द्रव्योंका सेवन कर नशेमें चूर होकर एक प्रकारकी औपाधिकी हरिभक्ति प्रकाश करनेका अभ्यास करते हैं अथवा अभ्यास द्वारा कृत्रिमरूपसे भक्तिके बाह्य लक्षणोंका अबोध मानव समाजमें प्रदर्शन करते हैं, अथवा जड़ रतिका अवलम्बन करके शुद्ध रतिको प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं । ऐसे लोग वैराग्य-चिह्न धारणपूर्वक औपाधिक वैरागी हो पड़ते हैं।

ऐसे वैराग्य अतिशय तुच्छ और अहितकर होते हैं।

यथार्थ वैराग्य

भक्ति उदित होने पर स्वाभाविक रूपसे विषयों के प्रति जो विरक्ति होती है, वही भक्तजीवनका सौन्दर्य है। कृत्रिम रूपसे पहले वैराग्य धारण करके तदनन्तर भक्तिका अन्वेषण करना अनैसर्गिक और अमङ्गलजनक होता है। सच्चा वैराग्य--जातभाव स्त्री-पुरुषोंका भूषण है। उसे भक्तिका अंग नहीं, बल्कि भक्तिका अनुभाव स्वरूप कह सकते हैं।

(४) मानशून्यता---स्वयं उत्तम या श्रेष्ठ होनेपर भी उस विषयमें अभिमानसे रहित होनेको मान-शून्यता कहते हैं। जो श्रेष्ठ नहीं हैं, जिनमें उत्तम गुण नहीं हैं, उनको कोई मान नहीं देता। ऐसी मानशून्यता भक्तिजीवनके अलंकारके रूपमें कदापि ग्रहण नहीं की जा सकती है। (क)

(५) आशाबन्ध---जिनको भावकी प्राप्ति हो चुकी है,ऐसे लोगोंके हृदयमें भगवत्प्राप्तिकी संभावना दृढ़ होकर आशाबन्धको उत्पन्न करती है। उस

(क) उत्कृष्टत्वेऽप्यमानित्वं कथिता मानशून्यता। (भ. र. सि.)

समय उनके हृदयमें कुतर्कसे पैदा होनेवाले संदेहका गंध भी नहीं रहता। (१)

(६) समुत्कण्ठा—अपने अभीष्टकी प्राप्तिमें जो अत्यधिक लालसा होती है, उसे समुत्कण्ठा कहते हैं। जातभाववाले व्यक्तियोंके भगवान ही एकमात्र अभीष्ट हैं। उनके प्रति समुत्कण्ठा प्रबल हो पड़ती है। (२)

(७) नाम-कीर्तनमें सदा रुचि—भावुक पुरुषों को भगवन्नाम कीर्तनमें सर्वदा रुचि होती है। अर्थात् उनको इसके अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। (३)

(८) कृष्णके गुणगानमें आसक्ति—जातभाव पुरुष कृष्णके गुणगानमें सर्वदा आसक्ति प्रकाश करते हैं। (४) रुचि ही अधिकतर गाढ़ी होनेपर आसक्ति कहलाती है।

(९) श्रीकृष्णके वासस्थलमें प्रीति—भगवानके वासस्थलमें प्रीति होना भावुक पुरुषोंका एक लक्षण है। भगवानके वासस्थान दो प्रकारके हैं—(१) जो प्रपंचमें स्थित हैं और (२) जो प्रपंचसे अतीत हैं। प्राकृत जगतमें भगवानकी लीलाके जो सब पीठ या क्षेत्र हैं, वे प्रपंचगत भगवत् वासस्थल हैं। उनके प्रति पराभक्तिका संयोग करनेसे भक्ति-नेत्रमें वे प्रपंचातीत वसतिस्थलके निदर्शन स्वरूप होते हैं। प्रपंचातीत वसतिस्थल चिज्जगत है। चित् जगत् दो प्रकारके हैं—शुद्ध चित् जगत् और भौम चिज्जगत्। शुद्धचिज्जगत—विरजाके उस पारमें परव्योम स्वरूप है। वहाँ पर जो भिन्न-भिन्न

---

(१) आशाबन्धो भगवतः प्राप्ति संभावना दृढ़ा।

श्रीमुख-वचनं यथा—

न प्रेमा श्रवणादिभक्तिरपि वा योगोऽयवा वैष्णवो-ज्ञानं वा शुभकर्म वा किमदहो सज्जातिरप्यस्ति वा।
हीनार्थाधिक साधके त्वयि तथाप्यच्छेद्यमूला सती, हे गोपीजनवल्लभ व्यथयते हा हा मदाशैव माम्।

(२) समुत्कण्ठा निजानीष्टलाभाय गुरुलुब्धता। (भ. र. सि.)

(३) रोदनबिन्दुमरन्दस्यन्दिदृगिन्दीवराद्य गोविन्द। तव मधुरस्वरकण्ठी गायति नामावलीं बाला।

(भ. र. सि.)

(४) नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किम्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयस्ते।

येऽङ्ग त्वदङ्घ्रि शरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशः कुशला रसज्ञाः॥ (भा ३।१५।४८)

रसपीठरूप भिन्न-भिन्न प्रकोष्ठ विद्यमान हैं, उन प्रकोष्ठोंमें भगवान् उन-उन रसोंके उपयोगी स्वरूपोंसे उन-उन रसोंके उपकरण स्वरूप शुद्ध जीवोंके साथ नित्यकाल विराजमान रहते हैं। जो बद्धजीव जिस प्रकोष्टके निर्दिष्ट रसका आस्वादन करना चाहते हैं, उन जीवोंके चिद् विभागमें—भक्तिपूत हृदयमें भगवानका वही विशेष स्वरूप विराजमान होता है। अतएव वैकुण्ठ और भक्त-जीवका हृदय—ये दोनों ही भगवानके वासस्थल हैं। भगवानके प्रपंच जगत्वाले लीलास्थान और भक्तोंके भजन-पीठोंको भगवानका प्रपंच-विजय कह सकते हैं। श्रीधाम वृन्दावन और श्रीधाम नव-द्वीप आदि भगवानके लीलास्थल तथा द्वादश पाट, नैमिषारण्य आदि वैष्णवक्षेत्र, गङ्गातीर, तुलसी क्षेत्र, भगवत्कथा स्थान और श्रीमूर्तिके अधिष्ठान—भगवानके श्रीमन्दिर और पादपीठ आदि—ये सब भगवानके वासस्थान हैं। (क) में इन स्थानोंमें वास करनेके लिये जातभाव पुरुषोंकी अतिशय प्रीति होती है।

श्रीकृष्ण

[शङ्करलाल चतुर्वेदी]

उसी अनन्त अनादि अचिन्त्यको
मानो अपना एक आधार।
कुसमय में भव-भव-में निपतित,
निज - जन को करता है पार॥
मौन हुआ यह कहकर भूपति,
विस्मयकारी दृश्य घटा।
कोटि दामिनी-दाम सदृश तव,
प्रभा - पुञ्ज - मनु आदि फटा॥

(क) पुण्या बत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्गः गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः।
गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीड़याञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः॥ (भा. १०।४४।१३)

चञ्चल नयन अचञ्चल हो गये,
चकाचौंध छाई तत्क्षण ।
नेत्र बन्द कर दम्पति बैठा,
पुनि खोला तो दृश्य विलक्षण ॥
मंजुल मुकुट मयंक प्रभा-सा,
माथ साथ रत्नों के देखा ।
कुण्डल कलित कनक मणि निर्मित
कल कर्णोंपर उसने देखा ॥
चन्द्र सदृश सुन्दर आनन था
कुवलय सम लोचन के जोड़े ।
मानो सुधा - सरोवर भीतर,
मधुमय कनक चषक मुख मोड़े ।
घुंघराले काले कच छाये,
अंशों पर आनन के ऊपर ।
मानो काले घनने घेरा;
राका शशि अम्बर के ऊपर ।
चार भुजा आजानु भुजंगसी,
कम्बु चक्र पंकज आयुधमय ।
वक्षस्थल भृगु-लाञ्छन लाञ्छित
मणि-वन-माला कल कौस्तुभमय ।
पीताम्बर कल कटि पर राजित,
भ्राजत पग नूपुरकी कल ध्वनि ।
जिसको सुनकर मोहित होते,
शम्भु-ब्रह्म-सुर-सारद नर मुनि ।
"नमो नमो प्रभु नमो विष्णु विभु,
नमो नमो वैकुण्ठ निवासी ।"
मञ्जुल ध्वनि नृप मुख से निकली
"नमो नमो सब घटके वासी ॥"

—क्रमशः

प्रश्नोत्तर

[श्री बी. एन शुक्ल, साहित्यभूषण महोदय (महू) ने कुछ प्रश्न भेजे हैं। इसके उत्तर सबके लिये लाभदायक होनेके कारण पत्रिकामें ही प्रकाशित किये जा रहे हैं। —सम्पादक]

प्रश्न—(१) श्रीरूपानुग धारा क्या है ?

उत्तर—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं। वे श्रीमती राधाके भाव एवं अङ्गकान्तिको ग्रहण कर–आश्रय जातीय उन्नत-उज्ज्वल प्रेम-रसका निर्यास स्वयं (प्रेमका विषय होने पर भी) आस्वादन कर उसका प्रथम बार जगत्को आस्वादन प्रदान करनेके लिये आविर्भूत हुए हैं। उन्होंने इस श्रीगौरावतारमें स्वयं उन्नतोज्ज्वल प्रेम-रस रूप श्रीराधाभावका आस्वादन कर निज प्रिय पार्षद श्रील रूप गोस्वामीको उक्त अप्राकृत प्रेम-रस निर्यास आस्वादन करनेके लिये क्रम पद्धतिकी शिक्षा दी तथा उनमें शक्ति संचार किया। श्रीरूप गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभु द्वारा शक्ति संचारित तथा उनकी शिक्षाओंसे शिक्षित होकर जगन्मङ्गलके लिये—भक्तिरसामृतसिन्धुमे अवगाहन कर उज्ज्वल नीलमणिको प्राप्त करनेके लिये श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वल-नीलमणि, श्रीदानकेलिकौमुदी, हंसदूत, उद्धव-संदेश, विदग्धमाधव, ललित-माधव, पद्यावलि और स्तवमाला आदि स्वरचित विभिन्न ग्रन्थोंके माध्यमसे एक परम चमत्कारपूर्ण, सर्वथा अभिनव एवं सर्वाङ्गपूर्ण भक्तिरसामृतसिन्धुकी धारा इस जगतमें प्रवाहित की है। वही धारा श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी एवं श्रील भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामीके माध्यमसे आज भी निरवच्छिन्न रूपमें प्रवाहित हो रही है। वर्तमान कालमें इस धाराको श्रीभक्तिविनोद धारा भी कहते हैं। यही श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल उपासनाकी विशुद्ध धारा है।

रसिक चूड़ामणि भगवत्पार्षद श्रीरूप गोस्वामी की शिक्षाओं, उनके आचार-विचारों तथा भजन पद्धतिको सर्वतोभावेन अंगीकार करना ही रूपानुगधारा है। जो श्रद्धालु व्यक्ति श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित और प्रचारित कृष्ण-प्रेमका आस्वादन करना चाहते हैं, उनके लिये श्रीरूप गोस्वामीका आनुगत्य करना अत्यन्त आवश्यक है। श्रीरूपानुगत्यके बिना उन्नत-उज्ज्वल-रस-निर्यासका आस्वादन बिलकुल असंभव है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई पथ नहीं है।

प्रश्न—(२) 'श्रील'–शब्द, जो महापुरुषोंके नाम के पूर्व लगाया जाता है, उसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर—(क) 'श्रील' में दो अक्षर हैं—श्री + ल। श्री = सम्पत्ति, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, सर्वलक्ष्मी स्वरूपिणी राधिका एवं विष्णु भक्ति—ये विविध अर्थ होते हैं।

ल (ला धातु ड=ल)—ग्रहण करना, लाना या प्रदान करना। अतः जो प्रेम-भक्ति रूप सम्पत्ति, ऐश्वर्य या सर्वलक्ष्मी स्वरूपिणी श्रीमती राधिका का दास्य ग्रहण करते हैं (जिनको प्रेमभक्तिरूप सम्पत्ति, ऐश्वर्य या श्रीमती राधिकाका दास्य प्राप्त है) या इन्हें दूसरोंको प्रदान करते हैं, उन भगवत्पार्षद जगद्गुरु आचार्योंके नामके पूर्व 'श्रील' का प्रयोग किया जाता है।

(ख) ला धातुका प्रयोग अस्ति (वर्त्तमान) संयोग या अधिकारीके अर्थोंमें भी होता है। अतः श्री अर्थात् ऐश्वर्य, विष्णुभक्ति या प्रेम भक्ति जिनमें विद्यमान है या जो इनसे युक्त हैं, या जो इनके अधिकारी हैं, उनके नामोंके पूर्व 'श्रील' का प्रयोग होता है।

(ग) 'श्रील' का प्रयोग (ला धातु अस्ति अर्थ में) जीवित व्यक्तियोंके नामोंके पूर्व होता है। जो ऐश्वर्यसे युक्त या प्रेम-रूप सम्पत्ति भक्तिसे युक्त महापुरुषगण कभी मरते नहीं हैं, वे सर्वदा जीवित रहते हैं अथवा जो महापुरुषगण विद्या, ग्रन्थ या शिक्षाके माध्यमसे पांचभौतिक शरीर त्याग करनेके अनन्तर भी जीवित हैं, उनके नामोंसे पूर्व 'श्रील' का प्रयोग किया जाता है।

प्रश्न—(३) श्रीगौड़ीय-वेदान्त और भक्ति-वेदान्तका परस्पर सम्बन्ध एवं समन्वय कैसे सम्भव है ? भक्ति भगवानको ही सब कुछ समझती है, जब कि वेदान्त सबको ब्रह्म मानता है।

उत्तर—वेदका सारभाग या शिरोभाग ही वेदान्त है। वेद+अन्त=वेदान्त अर्थात् वेदका अंत। 'अंत' शब्दसे सार, शिर (मस्तक) या शेषका बोध होता है। वेदका सार या सर्वोत्तम तत्त्व भक्ति है। इसलिये भक्ति ही वेदान्त है। वेदान्त कहनेसे एकमात्र भक्तिका ही बोध होता है।

साधारणतः लोग भ्रमवशतः वेदान्त कहनेसे ज्ञानको लक्ष्य करते हैं। उनका ज्ञानसे तात्पर्य निर्विशेष ज्ञानसे होता है। परन्तु श्रीवेदव्यास द्वारा रचित 'वेदान्त सूत्र' के पूरे ग्रन्थमें कहीं भी 'ज्ञान' शब्द का उल्लेख तक नहीं है। वेदान्त कहनेसे कर्म और ज्ञानका कदापि बोध नहीं होता। अभिधेय तत्त्व में भक्ति ही श्रेष्ठ है। कर्म और ज्ञानका प्राधान्य नहीं है। श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित भक्ति तत्त्व के विचारसे भगवानका नाम ग्रहण—नाम भजन ही सर्वश्रेष्ठ भजन है एवं नाम ही स्वयं भगवान कृष्ण हैं—"अभिन्नत्वात् नामनामिनः" यही नाम तत्त्व ही श्रेष्ठतम उपास्य हैं और श्रीनाम ग्रहण ही श्रेष्ठतम उपासना है। यह ब्रह्मसूत्र—वेदान्तसूत्रमें स्पष्ट रूपसे प्रतिपादित हुआ है।

दार्शनिक जगतमें उपक्रम और उपसंहार एक-तात्पर्यपर होता है। अर्थात् प्रारम्भ और अन्त एक तात्पर्य विशिष्ट नहीं होने पर दार्शनिक अप्रतिष्ठा होती है। ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्रके प्रारम्भमें 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'—शब्द ब्रह्मकी जिज्ञासा है और शेषसूत्र 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्' से शब्द ब्रह्म या नाम ब्रह्मकी पुनः पुनः आवृत्ति या कीर्तनसे ही अनावृत्ति अर्थात् संसार दुःखकी निवृत्ति और भगवद् पादपद्मकी सेवा अर्थात्

नामी ब्रह्मकी सेवा प्राप्त होती है। वेदान्तके मध्यमें भी 'अपिसंराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' आदिमें आराधना अर्थात् भक्तिका ही प्रतिपादन किया गया है। श्रीवेदान्तसूत्रके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवत में भी इसीकी पुनरावृत्तिकी गयी है—'अनयाराधितो हरिरीश्वरः'। यही भक्तिवेदान्त स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके एकान्त अनुगत गौड़ीय वैष्णवाचार्यों द्वारा प्रचारित होनेपर गौड़ीय वेदान्तके रूपसे प्रसिद्ध हुआ।

गौड़ीय कहनेसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत रसिक वैष्णवोंका बोध होता है। ऐसा कहनेके लिये भौगोलिक, व्यक्तिगत, और दार्शनिक कारण हैं। (१) भौगोलिक कारण—प्राचीन कालमें भारतवर्ष प्रधानतः गौड़ और द्राविड़—दो भागोंमें विभक्त था। उत्तर भारत पंचगौड़ (पाँच गौड़) और दक्षिणभारत पंच द्रविड़में विभक्त था। मध्ययुगमें अर्थात् भारतमें मुसलमानी राज्यकालमें केवल बंगाल ही प्रधान रूपमें गौड़ कहलाने लगा। उस समय वल्लालसेन और लक्ष्मणसेन गौड़ाधिपति कहलाते थे। इनकी राजधानी नवद्वीप (नदिया) थी। कालान्तरमें श्रीचैतन्य महाप्रभु इसी गौड़भूमि में आविर्भूत होकर वेद-वेदान्त-पुराण प्रतिपादित उपरोक्त शुद्धभक्तिका प्रचार किया। इसलिए उनका अनुगत सम्प्रदाय गौड़ीय सम्प्रदाय और अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्व—गौड़ीय वेदान्त दर्शन कहलाया।

(२) ब्रह्म-सम्प्रदायके अनुगत श्रीव्यास-शिष्य श्रीमध्वाचार्यका एक नाम गौड़पूर्णानन्द होनेके कारण गौड़ीय सम्प्रदाय कहनेसे मध्व सम्प्रदाय और मध्वानुगत श्रीचैतन्य सम्प्रदाय, दोनोंका बोध होता है। दोनो ही गौड़ीय हैं। यह व्यक्तिगत कारण है।

(३) श्रीकृष्ण ही रस-स्वरूप एवं रसिक-चूड़ामणि हैं। वे रसके विषय हैं। वे ही आश्रय जातीय रसका आस्वादन करनेके लिये आश्रय जातीय श्रीराधा-भाव-कान्ति ग्रहण कर श्रीगौर सुन्दरके रूपमें प्रकटित हैं। इन्हीं श्रीगौर-सुन्दरके एकान्त अनुगत रसिक सम्प्रदायका नाम गौड़ीय सम्प्रदाय है। शुद्धाद्वैत या अचिन्त्य-द्वैताद्वैत सिद्धान्त ही इनका दार्शनिक सिद्धान्त है। इसीको गौड़ीय वेदान्त या गौड़ीय दर्शन कहते हैं। यह गौड़ीय-वेदान्त ही भक्ति-वेदान्त है।

लोग भ्रान्तधारणाके वशीभूत होकर ही श्रीशंकराचार्य द्वारा प्रचारित निर्विशेष ज्ञानको वेदान्त-मत मानते हैं। उनकी इस भ्रान्त धारणाको दूर करनेके लिये ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय पार्षद ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की है तथा अपने अनुगत त्रिदण्डी - संन्यासियोंके नामके पूर्व 'भक्ति वेदान्त' को संयुक्त किया है। इसके द्वारा उन्होंने इस सत्य का उद्घाटन किया है कि भक्ति ही वेदान्त है और श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय भक्तजन ही यथार्थ 'वेदान्ती' हैं।

—सम्पादक

युक्त वैराग्यका स्वरूप

[परमाराध्यतम १०८ श्रीश्रील आचार्यदेव द्वारा श्रीराधामाधव ब्रह्मचारीके पत्रके उत्तरमें लिखित एक पत्रका अंश]

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
पो०–मथुरा (उ. प्र.)
२६-१०-६६

स्नेहास्पदेषु,

राधामाधव,

* * * * उसका मन क्षण-क्षणमें अशान्त होता है। इसका विशेष कारण यह है कि उसका चित्त अत्यन्त दुर्बल है। भक्ति उदित होने पर ही स्वाभाविक वैराग्य उदित होता है। स्वाभाविक वैराग्य के उदित हुए बिना ही दिखावटी वैराग्य अवलम्बन करनेसे उसका चित्त दुर्बल हो गया। जिस वैराग्यसे श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-सेवामें बल मिलता है, वही वैराग्य यथार्थ वैराग्य है। और जिस वैराग्यसे हरि-गुरु-वैष्णव-सेवासे विरक्ति हो उठती है, उस वैराग्यका तनिक भी मूल्य नहीं है। वैष्णव-सेवा त्यागका नाम वैराग्य नहीं है। सेवाकी प्रवृत्तिको जिस किसी भी उपायसे हो वृद्धि करनी चाहिए। दूसरे किसी भी वैष्णवमें वैराग्य नहीं है, केवल मुझमें ही वैराग्य है––इसको दंभ या प्रतिष्ठा कहते हैं, ऐसे दम्भ या प्रतिष्ठा से हरि-सेवा ध्वंश होकर अधोपतन हो जाता है। मठके आदर्शसे अनुप्राणित होना ही सरल वैष्णवता है। तुम इसे अच्छी तरहसे अनुशीलन करने की चेष्टा करना। ॥इति॥

नित्य मङ्गलाकांक्षी
श्रीभक्ति प्रज्ञान केशव